मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 70 ● वर्ष 8, अंक 6 ● अगस्त 2018 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

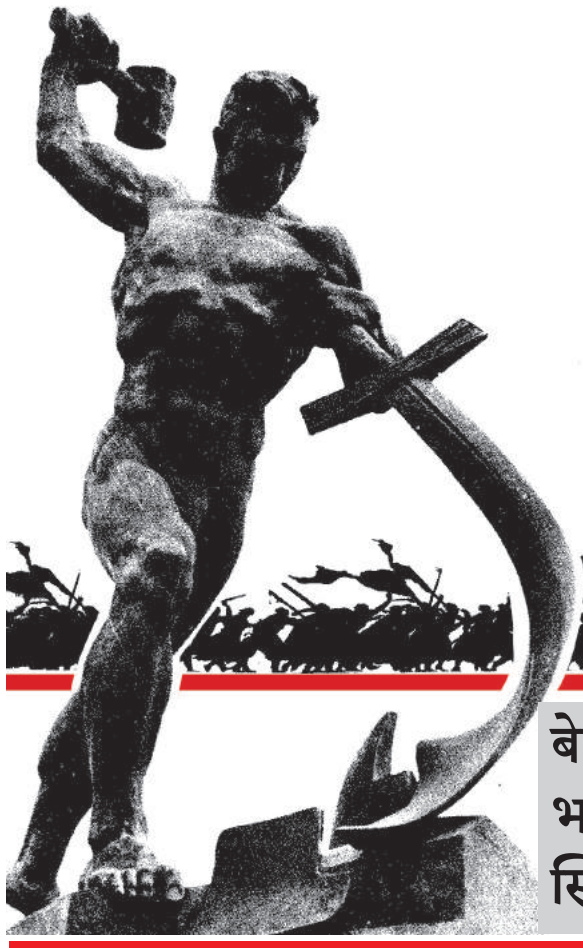

मज़दूर बिगुल

बेरोज़गारी की भयावह होती स्थिति 7

कौन आज़ाद हुआ? 15 अगस्त पर कुछ कविताएँ 15

रिलायंस की गैस चोरी और सीनाज़ोरी 16

मोदी सरकार के विकास के ढोल की पोल

आम लोगों के जीवनस्तर में वृद्धि के हर पैमाने पर देश पिछड़ा

‘अच्छे दिन’ सिर्फ़ लुटेरे पूँजीपतियों के आये हैं

सम्पादक मण्डल

यह अनायास नहीं है कि इस बार 15 अगस्त के भाषण में नरेन्द्र मोदी ने देश की अर्थव्यवस्था के बारे में कुछ हवाई जुमले उछालने के अलावा चार साल से हो रहे ''विकास'' की कोई ठोस बात नहीं की। दरअसल, झूठों और जुमलों के सिवा उनके पास बताने के लिए कुछ है ही नहीं। तथ्य यह है कि अर्थव्यवस्था की हालत पस्त है और इसकी सीधी मार देश के ग़रीबों और मेहनतकशों को झेलनी पड़ रही है।

संयुक्त राष्ट्र का तय किया हुआ मानव विकास सूचकांक लोगों की आमदनी, शिक्षा और स्वास्थ्य की स्थितियों को ध्यान में रखकर विकास का आकलन करता है। इसके आधार पर देखें तो मोदी सरकार के तहत देश ने कोई प्रगति नहीं की है। दुनिया के 188 देशों की सूची में भारत 138वें स्थान पर है – दक्षिण एशिया की सबसे बड़ी अर्थव्यस्था होने के बावजूद मानव विकास सूचकांक में हमारा देश श्रीलंका और मालदीव के बाद तीसरे स्थान पर है। मोदी सरकार भले ही ‘सबका साथ सबका विकास’ का नारा उछालती रही हो, मगर असलियत क्या है? विश्व आर्थिक मंच द्वारा विकसित समावेशी विकास सूचकांक (आईडीआई) प्रति व्यक्ति जीडीपी, श्रम की उत्पादकता, जीवन प्रत्याशा, रोज़गार, परिवार की औसत आय, आय तथा संपत्ति की असमानता, ग़रीबी की दर, सार्वजनिक कर्ज़ जैसे कई कारकों को आधार बनाता है। 2017 में आईडीआई में भारत का स्कोर 3.38 था जो 2018 में घटकर 3.09 हो गया। (शीर्ष पर स्थित नार्वे का स्कोर 6.08 है।) विकासशील देशों में भारत 2017 में 60वें स्थान पर था पर 2018 में खिसककर 62वें स्थान पर आ गया। विकास का एक और पैमाना है ख़ुशी सूचकांक (हैप्पीनेस इंडेक्स) जो आमदनी, स्वस्थ जीवन प्रत्याशा, सामाजिक सहायता, स्वतंत्रता, विश्वास और उदारता पर आधारित है। 10 के अधिकतम अंकों में से भारत का स्कोर लगातार कम होता जा रहा है। कुल 156 देशों में यह 2017 में 122वें स्थान पर था जहाँ से खिसककर 2018 में 133वें स्थान पर आ गया है। पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल और भूटान जैसे देश भी इस सूची में हमसे ऊपर हैं।

रोज़गार की हालत बद से बदतर होती जा रही है। मज़दूरी बढ़ नहीं रही है और बढ़ती महँगाई के सापेक्ष वास्तविक मज़दूरी में गिरावट आ रही है। अगर बेरोज़गारों के साथ ही अर्द्धबेरोज़गारों को भी जोड़ लें तो हालात भयावह नज़र आते हैं। काम न मिलने के कारण लाखों स्त्रियाँ श्रम बाज़ार से बाहर हो गयी हैं। हर साल एक करोड़ रोज़गार देने के जुमले के विपरीत हालत यह है कि प्रतिष्ठित ‘इंडियास्पेंड’ वेबसाइट के अनुसार 2014 से 2017 के बीच हर साल औसतन 2.13 लाख रोज़गार ही पैदा हुए। लोकनीति-सीएसडीएस-एबीपी न्यूज़ द्वारा मई 2018 में कराये गये तीसरे ‘राष्ट्र का मूड’ सर्वेक्षण में हर चार में से एक वोटर ने कहा कि देश की सबसे बड़ी समस्या रोज़गार है और हर पाँच में से तीन (57%) वोटरों ने कहा कि पिछले 3-4 वर्षों के दौरान उनके इलाक़े में रोज़गार मिलना पहले से अधिक कठिन हो गया है। जनवरी 2018 में यह आँकड़ा 49% था।

प्रधानमंत्री के अनुसार देश जल्दी ही दुनिया की बड़ी आर्थिक शक्तियों में शामिल हो जायेगा, लेकिन लोगों की सबसे बुनियादी ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो रही हैं। भूख और कुपोषण की स्थिति को दर्शाने वाले वैश्विक भूख सूचकांक पर भारत हर वर्ष नीचे खिसकता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य व कृषि संगठन की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के 19.07 करोड़ लोग, यानी 14.5 फीसदी आबादी कुपोषण का शिकार है। जनता को महाशक्ति बनने का सपना दिखाने वाले शासकों के लिए इससे बड़ी शर्म की बात क्या हो सकती है कि आज भी आये दिन भूख से लोगों की मौत हो जाती है। मगर इन बेशर्मों को शर्म भला क्यों आने लगी! खेती के गहराते संकट की सबसे बुरी मार ग़रीब

(पेज 3 पर जारी)

साल-दर-साल बाढ़ की तबाही : महज़ प्राकृतिक आपदा नहीं मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था का कहर!

– सत्यम

केरल की साढ़े तीन करोड़ जनता इस समय भयंकर विनाशकारी बाढ़ की तबाही झेल रही है। इसे पिछले 70 वर्षों की सबसे विनाशकारी बाढ़ बताया जा रहा है। यह लेख लिखे जाने तक बाढ़ के कारण राज्य में कम-से-कम 350 लोगों की जान जा चुकी है और 20,000 करोड़ से ज़्यादा की सम्पत्ति का नुक़सान हुआ है। राज्य के कई ज़िले लगभग पूरी तरह जलमग्न हैं। लाखों लोग घरों से दरबदर हो गये हैं और करीब दो लाख लोग राहत शिविरों में रहने को मजबूर हैं। इस तबाही से उबरने में केरल को लम्बा समय लगेगा। बाढ़ का पानी उतरने के बाद बड़े पैमाने पर बीमारियाँ फैलने का भी ख़तरा रहेगा। लाखों लोगों के घर और आजीविका के साधन बर्बाद हो गये हैं। हमेशा की तरह, इस विनाशलीला की सबसे बुरी मार ग़रीबों और मेहनतकशों पर ही पड़ेगी।

इस दौरान देश में लगातार तबाही मचा रही नफ़रत की बाढ़ भी अपने सबसे गन्दे रूपों में सामने आयी है। जिस समय केरल के लोगों को पूरे देश की मदद और साथ की ज़रूरत है, उसी समय सोशल मीडिया पर ऐसे घिनौने अभियान चलाये गये जिनमें लोगों से कहा गया कि वे केरल में मदद न भेजें। इसके तरह-तरह के कारण गिनाये गये – किसी में कहा गया कि वहाँ आधे से ज़्यादा मुस्लिम और ईसाई रहते हैं, तो किसी में कहा गया कि बाढ़ इसलिए आयी, क्योंकि सबरीमाला देवस्थान में स्त्रियों के प्रवेश के लिए आन्दोलन चलाया गया था। इनके पीछे कौन लोग हैं, इसे अब हर कोई समझता है। बाक़ायदा संगठित तरीक़े से चलाये गये अभियानों के तहत देश में करोड़ों लोगों के पास ऐसे व्हाट्सऐप मैसेज भेजे गये और फ़ेसबुक व ट्विटर पर हज़ारों पोस्ट किये गये। नरेन्द्र मोदी के एक-एक वाक्य और अदाओं पर घण्टों चर्चा करने वाले दर्जनों टीवी चैनलों के लिए कई दिनों तक यह कोई ख़बर ही नहीं थी। इन लोगों को सीधा संकेत ख़ुद देश की सरकार से मिल रहा था। मोदी सरकार के प्रचार पर 4300 करोड़ ख़र्च करने और मूर्तियों पर हज़ारों करोड़ ख़र्च करने वाली केन्द्र सरकार ने पहले तो केरल को सिर्फ़ 100 करोड़ की सहायता दी; फिर जब चौतरफ़ा आलोचना होने लगी तो 500 करोड़ की सहायता की घोषणा की गयी। लेकिन जिस स्तर की तबाही मची है, उसे देखते हुए यह राशि भी बेहद मामूली है।

केरल की मेहनतकश जनता के प्रयासों और देशभर के इंसाफ़पसन्द लोगों की मदद से केरल अन्ततः इस

(पेज 9 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

न्याय, विधान, सविंधान का घिनौना नंगा नाच

दिल्ली हाईकोर्ट ने कहा - दिल्ली में मज़दूरों का न्यूनतम वेतन नहीं बढ़ेगा, क्योंकि पड़ोसी राज्यों से ज़्यादा तनख़ा है दिल्ली में मज़दूरों की।

लेकिन आज मज़दूरों को ज़रूरत है लाखों में तब जाकर वे अपने माता-पिता, भाई-बहन-बच्चों को पाव-पाव दूध, खाने में दाल-सब्ज़ी, पढ़ाई, रहने के लिए घर नसीब हो सकता है। लेकिन आज की परिस्थिति आठ बाई आठ के कमरे में रहना, ना सही से खाने को, ना ही जीने का कोई उत्साह। सुबह जगो तो काम के लिए, नहाओ तो काम के लिए, खाओ तो काम के लिए, रात बारह बजे सोओ तो काम के लिए। ऐसा लगता है कि हम सिर्फ़ काम करने के लिए पैदा हुए हैं तो हम फिर अपना जीवन कब जीयेंगे। जहाँ तक तनख़ा की बात है, तो वो तो महीने की सात से दस के बीच में मिल जाती है, लेकिन सिर्फ़ पन्द्रह तारीख़ तक जेब में पैसे होते हैं, जिससे हम अपने बच्चों के लिए कुछ ज़रूरी चीज़ें ले पाते हैं। उसके बाद तो हर एक दिन एक-एक रुपया सोच-सोचकर ख़र्च करना पड़ता है। महीना ख़त्म होने से पहले ही बचे हुए रुपये भी ख़त्म हो जाते हैं।

ये काले कोटधारी सरकारी अफ़सर लाखों में सेलरी लेते हैं, फिर भी इनका ख़र्चा नहीं चलता। सरकारों में बैठे नेता, मन्त्री, विधायक, सांसद, आईएस, आईपीएस पढ़े-लिखे जोकर रिश्वत की चर्बी के बिना चल ही नहीं सकते।

मज़दूरों के लिए इनकी नज़र में सोलह हज़ार सेलरी ज़्यादा है।

मज़दूरों के लिए ये ख़ुशी की बात होनी चाहिए कि वर्तमान व्यवस्था के पास मज़दूरों को देने के लिए कुछ भी नहीं है, इसलिए इनके न्यायालय, कम्पनियों में आग लगाकर जश्न मनाने के दिन आ गये हैं। अगर मज़दूर ऐसा नहीं करता तो सरकारें एक बहुत बड़ी संख्या में बेरोज़गार मज़दूरों को किसी-न-किसी बहाने क़फ़न-दफ़न कर देंगी और कर रहे हैं।

मन्नू मज़दूर, ओखला दिल्ली

सत्ता के संरक्षण में जारी बच्चियों के यौन शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ!!

(पेज 5 से आगे)

व्यवस्था की प्रातिनिधिक घटना है। इस घटना ने राजनेताओं, प्रशासन, नौकरशाही, पत्रकारिता व न्यायपालिका सबको कटघरे में खड़ा कर दिया है!

वास्तव में बच्चियों-लड़कियों के इस बर्बर उत्पीड़न को हम तब तक नहीं समझ सकते, जब तक हम पूँजीवाद -पितृसत्ता के गँठजोड़ को नहीं समझ लेते। मौजूदा व्यवस्था में मुट्ठी-भर पूँजीपतियों का सारी चीज़ों पर नियन्त्रण है। भारत जैसे देशों में जहाँ एक ओर स्त्रियों को पैर की जूती समझने, 'भोग्या' समझने की पुरानी मान्यता क़ायम है, वहीं पूँजीवादी व्यवस्था के क़ायम होने के बाद आधुनिकता के नाम पर तर्क की जगह नयी विकृतियाँ भयंकर सड़ान्ध पैदा कर रही हैं। एक तरफ़ स्त्रियों को अपनी पोशाक, पेशा और जीवन साथी चुनने जैसे मामलों में आज़ादी नहीं है; वहीं दूसरी ओर मुनाफ़े के मद्देनज़र उनको विज्ञापनों, फ़िल्मों, पोर्न साइटों, घटिया गानों आदि के द्वारा बाज़ार के लिए बाज़ार में 'उपभोग की वस्तु' के रूप में उतार दिया है। मौजूदा व्यवस्था में आर्थिक संकट लगातार अपराध, बेरोज़गारी बढ़ा रहा है। नारी संरक्षण गृह, वेश्यावृत्ति के तमाम अड्डे इस व्यवस्था की देन हैं। फिर इन जगहों पर मौजूद लड़कियों के शरीर को मुनाफ़ा कमाने में इस्तेमाल किया जाता है। ख़ुद महिला एवं बाल विकास मन्त्री राजेन्द्र कुमार का बयान है कि तीन साल में 1 लाख बच्चों का यौन शोषण हुआ है। हर 24 घण्टे में 27 बच्चे लापता हुए हैं। 2015-16 में इसमें 4।4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। धनिकों, नेताओं, अफ़सरों की हवस पूरी करने के लिए इन जगहों से लड़कियों की सप्लाई होती है। पोर्न फ़िल्मों, बाल वेश्यावृत्ति का धन्धा अरबों का है। ये धन्धा बिना सरकार व प्रशासन को साथ लिए हो ही नहीं सकता है।

जैसे-जैसे पूँजी का संकट बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे राजनीति का अपराधीकरण बढ़ता जा रहा है। जनता के वास्तविक मुद्दों को उठाने व उनका समाधान करने में वर्तमान पूँजीवादी राजनीति अक्षम हो चुकी है। दंगाइयों, अपराधियों को टिकट दिया जाता है। बलात्कार के आरोपी संसद-विधानसभाओं में बैठे हैं। इनसे क्या स्त्रियों के बारे में किसी तरह की संवेदनशीलता की उम्मीद की जा सकती है? अभी हाल ही में मोदी सरकार के रेल राज्य मन्त्री गोंहाई के ख़िलाफ़ बलात्कार का मुक़दमा दर्ज हुआ है। 48 सांसद-विधायक ऐसे हैं जिन पर महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध के केस दर्ज हैं। जिसमें भाजपा सबसे आगे है। क्या इनको किसी क़ानून का डर है? कुलदीप सिंह सेंगर जैसे अपराधियों के चेहरे पर ख़ौफ़ का न होना और ब्रजेश ठाकुर जैसे बर्बर बलात्कारियों की हँसी क्या सब कुछ बयान नहीं कर देता? जहाँ थानों तक में बलात्कार होते हैं, जहाँ लाखों मामले न्यायालयों के पोथों में दफ़न हो जाते हैं, जहाँ 'भारत माता की जय', 'जय श्रीराम' के नारों और तिरंगे की आड़ में बलात्कार व हत्या जैसे अपराध को जायज़ ठहराया जाता है, वहाँ हम केवल व्यवस्था और सरकारों के भरोसे नहीं बैठे रह सकते! उन तमाम बच्चियों को तब तक इन्साफ़ नहीं मिलेगा, जब तक हम आवाज़ नहीं उठायेंगे! हमें हर ऐसी घटना के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरना होगा, लेकिन साथ ही इस पूँजीवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की क़ब्र खोदने के लिए एक लम्बे युद्ध का ऐलान करना होगा, जो इन सारे अपराधों की जड़ है।

''बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।'' - **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'! इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - 5/- रुपये वार्षिक - 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/- रुपये

हरिद्वार के सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र में बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं पर संघी गुण्डों और पुलिस का हमला!

उत्तराखण्ड की त्रिवेंद्र सिंह रावत सरकार किस तरह से जनान्दोलनों का दमन कर रही है और प्रदेश में लोकतांत्रिक स्पेस किस हद तक सिकुड़ चुका है इसकी बानगी पिछले दिनों के दौरान हरिद्वार में मज़दूर कार्यकर्ताओं के साथ हुए व्यवहार से देखी जा सकती है।

पिछले 12 अगस्त की शाम 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्ता हरिद्वार के सिडकुल (उत्तराखण्ड राज्य औद्योगिक विकास निगम) औद्योगिक क्षेत्र में "मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन" के तहत एक प्रचार अभियान चला रहे रहे थे कि महदूद नामक इलाक़े में एबीवीपी और हिन्दू युवा वाहिनी से जुड़े कुछ लोगों ने उन पर हमला कर दिया। उन पर लोगों को भड़काने का आरोप लगाते हुए ये लोग कार्यकर्ताओं से पर्चे छीनने और पोस्टर फाड़ने की कोशिश कर रहे थे और मज़दूरों से हाथापाई करके उन्हें भगा रहे थे। जब वे इसमें सफल नहीं हुए तो उन्होंने फ़ोन करके पुलिस बुला ली जिसने आते ही बिगुल मज़दूर दस्ता के पाँच कार्यकर्ताओं को हिरासत में ले लिया और अन्य मज़दूरों को डरा-धमकाकर हटा दिया। कार्यकर्ताओं के कहने पर भी हमला करने वाले संघी गुण्डों पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी। थाने में बिगुल के कार्यकर्ताओं के साथ गाली-गलौच और मारपीट की गयी और देशभर से अनेक ट्रेड यूनियनों, राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों आदि के फ़ोन जाने के बावजूद पुलिस यही कहती रही कि हम पर ऊपर से दबाव है, हम इनको ऐसे नहीं छोड़ सकते। यह पूरी कार्रवाई एक योजना के तहत की जा रही थी इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि "मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन" के तहत जो पर्चा बाँटा जा रहा था उसका पुलिस ने कोई ज़िक्र न तो पहले दिन किया और न ही अगले दिन एसडीएम कोर्ट में पेश करने पर किया। पुलिस ने कई महीने पहले बिगुल मज़दूर दस्ता और स्त्री मज़दूर संगठन की ओर से शहीदों की याद में बाँटे गये एक पर्चे को शिकायत का आधार बनाया जिसमें बिस्मिल, अशफ़ाक, भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों को याद करते हुए आज साम्प्रदायिक नफ़रत फैला रहे लोगों पर चोट की गयी थी। हालाँकि उसी दिन शाम को जारी पुलिस की प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया था कि ये लोग मज़दूरों को 16000 न्यूनतम मज़दूरी देने की माँग को लेकर जनसम्पर्क अभियान चला रहे थे। ज़ाहिर है कि बाद में हिन्दुत्ववादी संगठनों के दबाव में इसे हटाकर लोगों को

उत्तराखण्ड पुलिस के लिए मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी की माँग पर जागरूक करना "अराजकता और अशान्ति फैलाना" है!
स्थानीय पुलिस-प्रशासन हिन्दुत्ववादी संगठनों के दबाव में विरोध की किसी भी आवाज़ को दबाने पर आमादा है!

''भड़काने'' का आरोप लगा दिया गया। इन्हीं की शह पर अगले दिन के दैनिक जागरण में एक ख़बर छापी गयी कि मज़दूरों को "भड़काने" के कारण पुलिस ने कुछ लोगों को गिरफ्तार किया है।

इस क्षेत्र में मज़दूरों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक और संगठित करने के प्रयास हिन्दुत्ववादी संगठनों को बहुत नागवार गुज़रते हैं और वे पहले भी कई बार ऐसे प्रचार अभियानों पर हमला करने की कोशिश कर चुके हैं लेकिन मज़दूरों के विरोध के कारण उनकी दाल नहीं गलती थी। इस बार भी जब उनकी धमकियों, मारपीट, पर्चे फाड़ने का कोई असर होता नहीं दिखा तो उन्होंने पुलिस को बुला लिया। ग़रीबों के साथ होने वाले अपराधों की सूचना मिलने के बाद भी घण्टों तक न पहुँचने वाली पुलिस फ़ौरन हाज़िर हो गयी।

अगले दिन सभी कार्यकर्ताओं को एसडीएम कोर्ट में पेश किया गया। देहरादून और हरिद्वार से कई सामाजिक कार्यकर्ताओं के सुबह ही थाने पहुँच जाने और देशभर से पड़ रहे दबाव के कारण पुलिस कार्यकर्ताओं पर शान्तिभंग के अलावा और कोई गम्भीर धारा नहीं लगा पायी। हालाँकि कुछ सूत्रों से यह ख़बर भी मिली कि पुलिस इन पर लोगों को "विद्रोह के लिए भड़काने" की धाराएँ और रासुका लगाने की भी फ़िराक में थी। एसडीएम कोर्ट में हिन्दू वाहिनी का एक स्थानीय नेता और उसका भाई लगातार एसडीएम पर दबाव बनाने की कोशिश करता रहा। एसडीएम महोदय भी पुराने पर्चे की एक-एक पंक्ति (जिसमें भाजपा और संघ की नफ़रत की राजनीति का ज़िक्र था) पढ़कर कार्यकर्ताओं को धमकाने की कोशिश करते रहे। लेकिन शाम तक चार मज़दूर कार्यकर्ताओं को निजी मुचलके पर और एक कार्यकर्ता को ज़मानत पर रिहा करने का आदेश उन्हें देना पड़ा। लेकिन अभी रिहाई की काग़ज़ी कार्रवाई चल ही रही थी कि एसडीएम ने नया फ़रमान जारी कर दिया कि पाँचों कार्यकर्ताओं को 2-2 ज़मानतदार लाने होंगे। इस नये आदेश के ठीक पहले हिन्दू युवा वाहिनी के नेता काफ़ी देर तक एसडीएम के कमरे में बैठे हुए थे और एसडीएम का तमतमाया चेहरा देखकर अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि अन्दर क्या हुआ होगा। काफ़ी तर्क-वितर्क के बाद अन्ततः सभी कार्यकर्ताओं को अगले दिन 10 ज़मानतदार लेकर हाज़िर होने की शर्त पर देर शाम छोड़ा गया। अगले दिन घण्टों चले ड्रामे के बाद शाम को सभी कार्यकर्ताओं की ज़मानत की कार्रवाई पूरी हुई।

पुलिस और एसडीएम पहले दिन से लगातार इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि दो कार्यकर्ता "बाहरी" हैं। जब उनसे कहा गया कि देश का संविधान किसी को देश में कहीं भी जाकर काम करने और संगठन बनाने की इजाज़त देता है और अगर ये लोग कोई ग़ैरक़ानूनी काम नहीं कर रहे हैं तो इस बात से क्या फ़र्क पड़ता है कि वे स्थानीय निवासी हैं या नहीं, तो उन्हें फटकार लगायी गयी कि "हमें नसीहत देने की कोशिश मत करो"। उनके तर्क के हिसाब से आज अगर गाँधी चम्पारण के किसानों के लिए लड़ने गुजरात से वहाँ पहुँचते तो उन्हें "बाहरी" कहकर गिरफ़्तार कर लिया जाता! उनके पास इस बात का भी कोई जवाब नहीं था कि मज़दूरों को उनके बुनियादी अधिकारों के बारे में जागरूक करना "अराजकता फैलाना" कैसे हो सकता है? पुलिस और एसडीएम बार-बार यही कहते रहे कि आगे से यहाँ कोई भी कार्यक्रम करना हो तो पहले शासन से अनुमति लेनी होगी।

इस घटना ने एक बार फिर साबित किया है कि हिन्दुत्ववादी गिरोह दरअसल पूँजीपतियों के दलाल और लठैत तथा मज़दूरों-मेहनतकशों के दुश्मन हैं। बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा और स्त्री मज़दूर संगठन ने बाद में कहा कि ऐसे हमलों से वे दबने वाले नहीं हैं। उत्तराखण्ड के मज़दूरों का माँगपत्रक आन्दोलन अब और भी ताक़त के साथ आगे बढ़ाया जायेगा। उत्तराखण्ड सरकार, भगवा गिरोहों और उनके पीछे खड़े उद्योगपतियों-ठेकेदारों को यह जान लेना चाहिए कि अगर वे समझते हैं कि ऐसे टुच्चे हमलों से वे मज़दूरों की आवाज़ दबा देंगे तो वे बहुत बड़े भ्रम में हैं।

– बिगुल संवाददाता

मोदी सरकार के विकास के ढोल की पोल

(पेज 1 से आगे)

किसानों और खेतिहर मज़दूरों पर पड़ रही है। 2014 से 2016 के बीच खेती पर निर्भर 36000 से ज़्यादा लोगों ने आत्महत्या की। इसमें स्त्रियाँ शामिल नहीं हैं।

तो फिर अच्छे दिन किसके आये हैं?

अब कहने की ज़रूरत नहीं रह गयी है कि सरकार पूँजीपतियों की ही सेवा में जीजान से लगी हुई है। 'ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस' सूचकांक में भारत की स्थिति 2015 में 142 से 2018 में 100 पर पहुँच गयी है। यह सूचकांक व्यापार करने के लिए बेहतर स्थितियों (जिसमें श्रम क़ानूनों को ढीला करना शामिल है) और पूँजीपतियों के सम्पत्ति अधिकारों की बेहतर सुरक्षा पर आधारित है। हरदम राष्ट्रवाद की दुहाई देने वाली भाजपा की सरकार राष्ट्र की सम्पत्तियों को बेशर्मी के साथ देशी-विदेशी पूँजीपतियों को बेच रही है; चाहे वे सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम हों या फिर नदी, जंगल, खदान जैसे प्राकृतिक संसाधन हों।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों से प्राइवेट सेक्टर को दिये जा रहे बेहिसाब कर्ज़ों के रूप में सरकार देश के वित्तीय संसाधनों को भी अपने आक़ाओं पर लुटा रही है। राष्ट्रीकृत बैंकों से दिये जाने वाले ऋण तेज़ी से 'नॉन-परफ़ॉर्मिंग एसेट्स' बनते जा रहे हैं, यानी उनकी वसूली की कोई उम्मीद नहीं है। कॉरपोरेट घरानों को दिये कर्ज़ों को रफ़ा-दफ़ा करने में भाजपा सरकार ने पिछली सरकारों को काफ़ी पीछे छोड़ दिया है। 2014 से 2016 के बीच बट्टे खाते में डाले गये कर्ज़ों की संख्या दोगुनी हो गयी। राष्ट्रवादी सरकार की देखरेख में राष्ट्र के संसाधनों को पूँजीपतियों के हवाले करने की बेशर्मी भरी दास्तान इतनी ही नहीं है! देश का चौकीदार चोरों के सामने इतना मस्त होकर खर्राटे भर रहा है कि पिछले पाँच साल में बैंक घोटालों की संख्या दोगुना बढ़ गयी है। 2015 के शुरू में बैंकों द्वारा दिये ''बुरे ऋणों'' की कुल राशि लगभग 3.2 लाख करोड़ थी। दिसम्बर 2017 में यह छलाँग लगाकर 8.41 लाख करोड़ रुपये तक पहुँच गयी। विजय माल्या, नीरव मोदी और मेहुल चोकसी से भी कई गुना कर्ज़े अम्बानी, अडानी, बिड़ला जैसे पूँजीपतियों ने दबा रखे हैं जिन पर सरकार कभी मुँह ही नहीं खोलती। उल्टे, बैंकों के घाटे की वसूली के लिए ग़रीब जनता की गाढ़ी कमाई के रुपयों पर डकैती डाली जा रही है। 2017-18 में सार्वजनिक क्षेत्र के 21 और निजी क्षेत्र के 3 बैंकों ने खाते में कम राशि रखने के कारण ग़रीबों से 5000 करोड़ रुपये वसूल लिये।

ऐसे में कोई हैरानी नहीं कि देश की कुल सम्पदा का भारी हिस्सा ऊपर के सिर्फ़ एक प्रतिशत लोगों की मुट्ठी में क़ैद होता जा रहा है। मोदी के शासन में यह हिस्सा 49 प्रतिशत से बढ़कर 58.4 प्रतिशत तक पहुँच चुका है। देश की सम्पदा आम लोगों की मेहनत से पैदा होती है जिन्हें उनकी पैदावार का एक छोटा-सा हिस्सा ही मिलता है। बाक़ी सब मालिक लोगों और उनके लग्गुओं-भग्गुओं की जमात हड़प जाती है। 2017 में, देश में पैदा हुई नयी सम्पदा का 73 प्रतिशत हिस्सा देश के सबसे अमीर एक प्रतिशत लोगों के पास चला गया। पिछले 12 महीनों में, इस तबके की सम्पत्ति में 20,913 खरब रुपये का इज़ाफ़ा हुआ है। यह राशि 2017-18 के केन्द्रीय बजट के बराबर है। मोदी सरकार आने से पहले, 2013-14 में कुल कॉरपोरेट मुनाफ़ा 3.95 लाख करोड़ था। मोदी के साथ से विकास करते हुए 2016-17 में कॉरपोरेटों का मुनाफ़ा 23 प्रतिशत बढ़कर 4.85 लाख करोड़ हो गया।

मोदी सरकार और संघ परिवार का एजेण्डा बिल्कुल साफ़ है। लोग आपस में बँटकर लड़ते-मरते रहें और वे अपने पूँजीपति मालिकों की तिजोरियाँ भरते रहें। सोचना इस देश के मज़दूरों और आम लोगों को है कि वे इन देशद्रोहियों की चालों में फँसकर ख़ुद को और आने वाली पीढ़ियों को बर्बाद करते रहेंगे या फिर इन फ़रेबियों से देश को बचाने के लिए एकजुट होंगे।

दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी पर हाई कोर्ट का फ़ैसला पूँजीवादी व्यवस्था की कलई खोल देता है

- सिमरन

4 अगस्त 2018 को दिल्ली हाई कोर्ट के 2 जजों की बेंच ने दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी पर फ़ैसला सुनाते हुए मार्च 2017 से बढ़ी हुई न्यूनतम मज़दूरी की दरों को 'असंवैधानिक' बताते हुए ख़ारिज कर दिया। जस्टिस गीता मित्तल और जस्टिस सी. हरी शंकर ने दिल्ली के व्यापारियों, फ़ैक्टरी मालिकों और रेस्तराँ मालिकों द्वारा न्यूनतम मज़दूरी में वृद्धि के ख़िलाफ़ दायर मुक़दमे की सुनवाई के दौरान यह फ़ैसला सुनाया। दिल्ली सरकार ने साल 2016 में दिल्ली विधानसभा में न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम (दिल्ली) में संशोधन पारित कर अनुसूचित रोज़गार के तहत आने वाले सभी कामगारों का न्यूनतम वेतन बढ़ाया था। मगर केन्द्र सरकार ने इसमें कुछ बदलावों का सुझाव देते हुए इसे वापस भेज दिया। साल 2017 के मार्च के महीने में दिल्ली के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर ने दिल्ली सरकार के न्यूनतम मज़दूरी को संशोधित करने के प्रस्ताव को अपनी सहमति दे दी थी। जिसके फलस्वरूप काग़ज़ों पर दिल्ली में अकुशल मज़दूर की न्यूनतम मज़दूरी 13,350 रुपये प्रतिमाह, अर्ध-कुशल मज़दूर की न्यूनतम मज़दूरी 14,698 रुपये प्रतिमाह और कुशल मज़दूर की न्यूनतम मज़दूरी 16,182 रुपये प्रतिमाह हो गयी थी। हालाँकि यह एक अलग बहस का मुद्दा है कि पिछले एक साल में दिल्ली के कितने प्रतिशत मज़दूरों को इस न्यूनतम मज़दूरी का भुगतान किया गया। इस पर हम बाद में आयेंगे, लेकिन पहले दिल्ली हाई कोर्ट के फ़ैसले ने किस तरह इस व्यवस्था का असली चेहरा बेनक़ाब किया है, उस पर चर्चा करना ज़रूरी है।

अपने 218 पन्नों के फ़ैसले में हाई कोर्ट के जज लिखते हैं कि न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम (दिल्ली) में किया गया संशोधन असंवैधानिक है और यह प्राकृतिक न्याय के ख़िलाफ़ है। इस संशोधन की असंवैधानिकता को हाई कोर्ट ने संविधान के अनुछेद 14 के उल्लंघन के कारण जायज़ ठहराया। साथ ही इस संशोधन के लिए सुझाव देने वाली कमिटी के गठन को हाई कोर्ट ने न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948 के अनुभाग 5(1) और 9 का उल्लंघन करते पाया। हाई कोर्ट ने कहा कि क्योंकि न्यूनतम वेतन में संशोधन करने की प्रक्रिया में नियोक्ताओं (मालिकों) और मज़दूरों के पक्ष को शामिल नहीं किया गया, इसीलिए यह संशोधन ग़ैरक़ानूनी है। अब ज़रा एक नज़र अनुच्छेद 14 पर डालते हैं, जो कहता है कि सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्राप्त है। लेकिन "निष्पक्ष व्यवहार और उचित प्रक्रिया" का पालन न करने की दलील देते हुए हाई कोर्ट ने दिल्ली में संशोधित न्यूनतम मज़दूरी को खारिज़ कर दिया। देश के किसी भी महानगर में रहने वाला कोई भी व्यक्ति यह भली-भाँति जानता है कि इस महँगाई और भीषण बेरोज़गारी के दौर में गुज़ारा करना कितना मुश्किल है। उस पर दिल्ली जैसे शहर में मज़दूरी करना, जहाँ न्यूनतम वेतन के भुगतान के क़ानून का नंगा उल्लंघन किया जाता है, वहाँ अपना और अपने परिवार का पालन-पोषण करना कितना कठिन है। लेकिन इस सबके बावजूद भी जिस न्यायपालिका को पहले मज़दूरों की ज़िन्दगी के हालात को मद्देनज़र रखना चाहिए था, उसने अपनी प्राथमिकता में मालिकों के मुनाफ़े को रखा। जिस दिल्ली में न्यूनतम वेतन, काम के घण्टे 8 और बाक़ी 260 श्रम क़ानूनों का नंगा उल्लंघन किया जाता है, वहाँ मालिकों की एक अपील पर हाई कोर्ट हरक़त में आ जाता है। वज़ीरपुर, बवाना, करावल नगर, खजूरी, गाँधी नगर, मायापुरी आदि औद्योगिक इलाक़ों में हर रोज़ मज़दूरों का शोषण किया जाता है, उनसे जबरन 12 से 14 घण्टे और कहीं-कहीं तो 16 घण्टे तक काम करवाया जाता है। न तो उन्हें न्यूनतम वेतन दिया जाता है और न ही ओवरटाइम का भुगतान डबल रेट के हिसाब से किया जाता है। ईएसआई और पीएफ़ की तो बात ही छोड़िए। लेकिन इतने सारे श्रम क़ानूनों के उल्लंघन में लिप्त मालिकों के 'संवैधानिक अधिकारों' की रक्षा के लिए इस देश के सभी न्यायालय खुले हैं। वहीं मज़दूर वर्ग को अपने जायज़ हक़ों के लिए लेबर कोर्ट में अपनी चप्पलें घिसाने और अफ़सरों की जेब गरम करने के बाद भी न्याय नहीं मिलता। क्या मज़दूरों के प्रति इस देश के न्यायालयों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं बनती? क्या उचित प्रक्रिया में यह सवाल नहीं उठाया जाना चाहिए कि कितनी फ़ैक्टरियों, कारख़ानों और रेस्तरों में श्रम क़ानूनों का पालन किया जाता है? क्यों यह सवाल ग़ैर-ज़रूरी बन जाते हैं। असंगठित क्षेत्र में ही नहीं बल्कि नियमित प्रकृति के काम में भी मज़दूरों को ठेके पर खटाया जाता है जो कि क़ानूनन अपराध है। क्यों इस देश की कोई भी न्यायपालिका इन सब गम्भीर क़ानून के उल्लंघनों को संज्ञान में लेते हुए मज़दूरों के पक्ष में कोई क़दम नहीं उठाती। क्यों जब मज़दूर न्यूनतम वेतन या ठेका प्रथा ख़त्म करने जैसी अपनी संवैधानिक माँगों को उठाते हैं तो उल्टा पुलिस प्रशासन उन पर कार्यवाही कर मुक़दमा दायर कर देती है। पूरी दिल्ली के मज़दूरों की ज़िन्दगी की हालत एक जैसी है। ज़्यादातर मज़दूरों को न्यूनतम वेतन नहीं दिया जाता, उस पर अगर वो मालिक से न्यूनतम वेतन देने की माँग करते हैं तो मालिक उन्हें काम से निकाल बाहर करता है और उनकी कोई सुनवाई न तो प्रशासन करता है न सरकार। कागज़ पर चाहे न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाकर 50,000 रुपये ही क्यों न कर दी जाये असली मुद्दा उसको लागू करवाने का है। और पिछले कई दशकों में यह साबित हो चुका है कि श्रम विभाग या किसी भी पार्टी की सरकार की न्यूनतम मज़दूरी को सख़्ती से लागू करवाने में कोई दिलचस्पी नहीं है। ऐसे में हाई कोर्ट का दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी की बढ़ी हुई दरों को ख़ारिज करने का फ़ैसला सिर्फ़ यही ज़ाहिर करता है कि यह व्यवस्था सबसे पहले पूँजीपतियों और फ़ैक्टरी मालिकों के हितों का संरक्षण करती है।

आम आदमी पार्टी इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ उचित कार्यवाही करने की बात कर रही है। लेकिन अगर वाक़ई में आम आदमी पार्टी को मज़दूरों के हितों की इतनी फ़िक्र होती तो वो क्यों दिल्ली में न्यूनतम वेतन लागू करवाने में (चाहे बढ़ा हुआ या पुराना) अब तक असफल है। जबकि ख़ुद उनके कितने विधायक फ़ैक्टरी मालिक है, ख़ुद वो अपनी फ़ैक्टरियों में न्यूनतम वेतन और घण्टे 8 के क़ानून को क्यों लागू नहीं करते। 2015 से लगातार वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूर जब भी इलाक़े से आम आदमी पार्टी के विधायक राजेश गुप्ता के दफ़्तर न्यूनतम वेतन लागू करवाने की अपनी माँग को लेकर जाते तो विधायक महोदय अपने दफ़्तर से ही भाग खड़े होते या मज़दूरों से मिलने से ही इनकार कर देते। आम आदमी पार्टी का मज़दूर विरोधी चेहरा दिल्ली के मज़दूरों के सामने तो साल 2015 में ही बेपर्दा हो गया था। जब 25 मार्च 2015 को ठेका प्रथा ख़त्म करने के आम आदमी पार्टी के चुनावी वादे की याददिहानी कराने पहुँचे दिल्ली के तमाम क्षेत्रों से आये हज़ारों मज़दूरों पर दिल्ली सरकार ने बर्बर लाठीचार्ज करवाया था। दिल्ली के इतिहास में इतना बर्बर लाठीचार्ज शायद ही पहले कभी हुआ हो जिसमें महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गों पर पुलिस और अर्ध-सैनिक बलों ने निर्मम लाठीचार्ज किया। जिसमें दर्जनों मज़दूरों और आम नागरिकों को गम्भीर चोटें पहुँचीं। साथ ही एक दर्जन मज़दूर कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया। अकसर दिल्ली सरकार के समर्थक यह कहकर इस बर्बर लाठीचार्ज से सरकार की जवाबदेही ख़त्म करने का प्रयास करते हैं कि पुलिस दिल्ली सरकार के मातहत नहीं है। लेकिन अगर इस तर्क को एक मिनट के लिए मान भी लिया जाये तो क्यों बात-बात पर धरना देने वाले अरविन्द केजरीवाल और उनके मन्त्रियों ने दिल्ली में हुए इतने बर्बर लाठीचार्ज के ख़िलाफ़ एक बयान तक जारी नहीं किया। फ़िल्मों तक के बारे में ट्वीट करते रहने वाले दिल्ली के मुख्यमन्त्री मज़दूरों पर हुए इतने बर्बर लाठीचार्ज के बाद भी चुप्पी साधे रहे? आम आदमी पार्टी के लिए न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाने का खेल एक तीर से दो शिकार करने की नीति से ज़्यादा कुछ नहीं है। न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम में संशोधन कर आम आदमी पार्टी की सरकार ने पिछले एक साल में वाहवाही लूटने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ा जबकि ज़मीनी हक़ीक़त यह है कि दिल्ली के किसी भी औद्योगिक इलाक़े में इसे लागू नहीं किया गया। वहीं हाई कोर्ट के ताज़ा फ़ैसले से आम आदमी पार्टी को एक और मौक़ा मिल गया है ख़ुद को मज़दूर हितैषी दिखाने का। अगर उन्हें वाकई मज़दूरों की ज़िन्दगी के हालात से कुछ लेना-देना होता तो केजरीवाल मार्च 2015 में अपने दफ़्तर से आधा किलोमीटर दूर इकट्ठा हुए हज़ारों मज़दूरों से मिलने ज़रूर आते और उन पर बर्बर लाठीचार्ज नहीं करवाते।

रही बात दिल्ली हाई कोर्ट की, तो उसके फ़ैसले ने एक बार फिर यह साबित कर दिया है कि मज़दूरों को अगर न्याय चाहिए तो उन्हें वह सिर्फ़ और सिर्फ़ अपनी एकजुटता के बल पर हासिल हो सकता है। जिस प्रकार काम के 8 घण्टे के क़ानून का अधिकार मज़दूर संघर्षों के लम्बे इतिहास से हासिल किया गया था, उसी प्रकार अपने अधिकारों के लिए आज मज़दूर वर्ग को एकजुट होकर संघर्ष की राह पर आगे बढ़ना होगा।

गोबिन्द रबर लिमिटेड, लुधियाना के मज़दूर संघर्ष की राह पर

गोबिन्द रबड़ लि. (जीआरएल) भारत की दस बड़ी टायर निर्माता कम्पनियों में से एक है। इस कम्पनी का मुख्यालय मुम्बई में है। गोबिन्द रबड़ लि. के मालिक विनोद पोद्दार का दिसम्बर 2017 में पंजाब सरकार के साथ पंजाब में 5000 करोड़ रुपये का निवेश करने का समझौता हुआ था। तब पंजाब सरकार ने बड़ी-बड़ी हाँकते हुए कहा था कि पंजाब में इस समझौते से कई हज़ार नौकरियाँ पैदा होंगी। हज़ारों करोड़ का यह नया निवेश होना और हज़ारों नयी नौकरियाँ पैदा होना तो बहुत दूर की बात है, गोबिन्द रबड़ लि. की पंजाब में पहले से चल रही तीन यूनिटें भी ठप पड़ी हैं। अप्रैल 2018 के आख़िरी सप्ताह तक आते-आते उत्पादन बन्द कर दिया गया। मज़दूरों का जनवरी से अप्रैल तक का वेतन रोक लिया गया (मैनेजरों का एक भी पैसा नहीं रुका!) और उसके बाद मज़दूरों को जबरन छुट्टी पर भेज दिया गया। तब से मैनेजमेण्ट मज़दूरों को झूठे वादे करती जा रही है कि कारख़ाने चलेंगे और सबको वेतन भी दिया जायेगा, लेकिन इतने महीने गुज़र जाने के बाद यह साफ़ हो चुका है कि इनके इरादे कुछ और ही हैं।

तीन यूनिटें बन्द करके न सिर्फ़ 1500 से अधिक मज़दूरों को बेरोज़गार कर दिया गया और उनका चार-चार महीने का वेतन रोककर रख लिया गया है, बल्कि अक्टूबर 2017 से कम्पनी मालिक मज़दूरों का ईपीएफ़ और ईएसआई का पैसा भी खा गये हैं। करोड़ों के इस घोटाले की तरफ़ श्रम विभाग व पंजाब सरकार दोनों ही आँखें मूँदकर बैठे हैं। क्यों? इसके बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। भ्रष्टाचार पर लगाम कसने की सिर्फ़ बातें की जाती हैं, जबकि वास्तव में इसे बढ़ावा ही दिया जा रहा है और पंजाब सरकार व श्रम विभाग की इसमें भागीदारी है।

सभी राज्य सरकारें अपने राज्य में निवेश बढ़ाने के लिए पूँजीपतियों को तरह-तरह की छूटें और सहायता देती हैं। ज़ाहिर है, इन छूटों की वसूली भी जनता की जेब से ही होती है। लेकिन इन कम्पनियों में श्रम क़ानूनों का पालन हो रहा है या नहीं, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं होता।

गोबिन्द रबड़ के मज़दूरों ने बहुत सब्र दिखाया है। अब उनके सब्र का बाँध टूट चुका है। अब वे चुप नहीं बैठने वाले हैं। जिन्होंने मज़दूरों की ख़ून-पसीने की मेहनत का पैसा दबाया है, मज़दूर भी उन्हें अब चैन की नींद नहीं सोने देंगे। मज़दूरों ने फ़ैसला किया है कि वे मालिक के खिलाफ़ ज़ोरदार संघर्ष करेंगे।

15 अगस्त को जब पूँजीपति वर्ग आज़ादी के जश्न में डूबा हुआ था, उस समय गोबिन्द रबड़ के मज़दूर इस आज़ादी को झूठा क़रार देते हुए अपने हक़-अधिकार हासिल करने के लिए अपने एकजुट संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए विचार-विमर्श कर रहे थे। उनकी एक बड़ी मीटिंग कम्पनी की यूनिट न. 1 के सामने थापर पार्क में हुई। उन्होंने फ़ैसला लिया कि कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में संघर्ष किया जायेगा। नेतृत्वकारी कमेटी का चुनाव किया गया और साथ ही फ़ैसला किया गया है कि 20 अगस्त को श्रम विभाग कार्यालय, लुधियाना पर ज़ोरदार प्रदर्शन करके इंसाफ़ के लिए आवाज़ बुलन्द की जायेगी।

- लखविन्दर

मुज़फ़्फ़रपुर, देवरिया से लेकर पूरे देश भर में बच्चियों का आर्तनाद नहीं, बल्कि उनकी धधकती हुई पुकार सुनो!

सत्ता के संरक्षण में जारी बच्चियों के यौन शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ!!

– वारुणी

पिछले जुलाई महीने में सामने आयी बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर में बालिका गृहों में हुई बलात्कार की घटना ने सबको झकझोर कर रख दिया। उसके कुछ दिनों बाद ही देवरिया, प्रतापगढ़, पटना से लेकर पूरे देश भर में पूँजीवादी पितृसत्ता का कोढ़ फूटकर बह निकला। पूँजी और सत्ता की मद में चूर बर्बर बलात्कारी किसी पौराणिक कथा के राक्षसों से भी ज़्यादा बर्बर कृत्यों को अंजाम दे रहे हैं और अट्टहास कर रहे हैं। सत्ता के संरक्षण में ऐसे कुकृत्य को अंजाम दिया जाना पूरी व्यवस्था पर सवाल खड़ा करता है।

सबसे पहले मुज़फ़्फ़रपुर में यह घटना सामने आयी। कुछ महीने पहले बिहार सरकार की पहल पर टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ सोशल साइंस (टिस) की 'कोशिश' यूनिट द्वारा बिहार के तमाम बालिका गृहों का सोशल ऑडिट करवाया गया था। क़रीब 38 ज़िलों के 110 ऐसे संस्थानों में यह ऑडिट किया गया और इसकी रिपोर्ट 27 अप्रैल 2018 को सरकार के समाज कल्याण विभाग को सौंप दी गयी। इस रिपोर्ट में साफ़ ज़ाहिर किया था कि 14 ऐसे संस्थान हैं जहाँ पर यौन शोषण होने की आशंका जतायी गयी। इस रिपोर्ट के आधार पर टिस द्वारा तुरन्त कार्यवाही करने व जाँच टीम भेजने की माँग की गयी, लेकिन इसके बावजूद भी समाज कल्याण विभाग ने कोई कार्यवाही नहीं की। 1 महीने बाद यानी 31 मई को पुलिस स्टेशन में एफ़आईआर दर्ज की जाती है और वह भी सिर्फ़ मुज़फ़्फ़रपुर के सेवा संकल्प समिति द्वारा चलाये जा रहे संस्थान पर! लेकिन उसमें भी एक महीने तक कोई गिरफ़्तारी नहीं होती है! एक कैम्पस में 34 बच्चियों के साथ बलात्कार का नेटवर्क एक्सपोज़ हुआ और तब तक मुख्य आरोपी का चेहरा किसी ने नहीं देखा था। 3 जून को मुख्य अपराधी ब्रजेश ठाकुर समेत 10 अन्य अपराधियों की गिरफ़्तारी होती है, लेकिन उस पर भी ख़बर की पड़ताल ठप रहती है। शुरुआत से ही मीडिया भी इस पूरे रुख पर चुप्पी साधे रहती है। जिस बालिका गृह में 42 में से 34 लड़कियों के साथ बलात्कार लगातार होता रहा, यह कैसे सम्भव है कि वहाँ हर महीने जाँच के लिए जाने वाले एडिशनल ज़िला जज के दौरे के बाद भी मामला सामने नहीं आ सका। बालिका गृह के रजिस्टर में दर्ज है कि न्यायिक अधिकारी भी आते थे और समाज कल्याण विभाग के अधिकारी के लिए भी सप्ताह में एक दिन आना अनिवार्य है। बालिका गृह की देखरेख के लिए पूरी व्यवस्था बनी हुई है। समाज कल्याण विभाग के पाँच अधिकारी होते हैं, वकील होते हैं, सामाजिक कार्य से जुड़े लोग होते हैं। एक दर्जन से ज़्यादा लोगों की निगरानी के बाद भी 34 बच्चियों के साथ बलात्कार हुआ है। हाईकोर्ट के अधीन राज्य विधिक आयोग होता है जिसके मुखिया हाईकोर्ट के ही रिटायर जज होते हैं। बालिका गृहों की देखरेख की ज़िम्मेदारी इनकी भी होती है। मामला सामने आते ही उसी दिन राज्य विधिक आयोग की टीम बालिका गृह पहुँची। उसकी रिपोर्ट के बारे में जानकारी नहीं है। ब्रजेश ठाकुर की हँसी बयान कर रही है कि बिना सत्ता में बैठे लोगों और पुलिस की मिलीभगत के यह काण्ड सम्भव नहीं था!

इतने बड़े काण्ड को मीडिया ने भी प्रमुखता से नहीं दिखाया! ज़िला हालात-ए-बिहार और अंग्रेज़ी दैनिक न्यूज़ नेक्स्ट भी चलाता है। इसका दफ़्तर बालिका गृह के प्रांगण में ही है। ब्रजेश ठाकुर के अख़बारों का प्रसार तो वैसे बहुत कम था, लेकिन सरकारी विज्ञापन नियमित मिलते थे और इस बीच विज्ञापनों की संख्या में वृद्धि भी हुई। यही नहीं, प्रातः कमल, हालात-ए-बिहार और न्यूज़ नेक्स्ट के कम से कम 9 पत्रकारों को एक्रेडिटेशन कार्ड मिला हुआ है। और तो और प्रेस इनफ़ॉर्मेशन ब्यूरो के एक्रेडिटेड पत्रकारों में ब्रजेश ठाकुर भी शामिल है।

टिस की रिपोर्ट के बाद ब्रजेश ठाकुर भी सरकार द्वारा बड़े मात्रा पर विज्ञापन मिलने, यह सब बिना सत्ता के संरक्षण के सम्भव नहीं!

इस पूरे मामले के सामने आने पर, जिसमें 42 में से 34 बच्चियों के साथ बलात्कार की पुष्टि हुई है, उन्हें दूसरे बालिका गृहों में स्थानान्तरित कर दिया गया है। पर उनमें से 11 साल की एक बच्ची, जिसने ब्रजेश ठाकुर की पहचान की थी, को मधुबनी के बालिका गृह में भेज दिया गया और वह बच्ची अब ग़ायब हो गयी है। ख़बर यह भी है कि मधुबनी के बालिका गृह का संचालन जदयू नेता संजय झा के पीए की पत्नी संचालित करती है। इस ख़बर के प्रकाशन के बाद एक तरफ़ स्थानीय पुलिस अधिकारी कहते हैं कि बच्ची विकलांग है, बोल नहीं सकती है और वह भाग गयी है, जबकि सच्चाई कुछ और ही है! दरअसल वह बच्ची बस हकला कर बोलती है।

संस्करण में ख़बर छपती रही मगर राजधानी पटना तक नहीं पहुँची! जब पहुँची तब लोगों के संघर्षों के दबाव में आकर "सुशासन बाबू" नीतीश कुमार को इस मसले पर अपनी चुप्पी तोड़नी पड़ी! चुप्पी इसलिए भी तोड़नी पड़ी क्योंकि जदयू की ही समाज विभाग की मन्त्री मंजू वर्मा के पति का नाम इसमें आ रहा था! इस काण्ड के मुख्य आरोपी ब्रजेश ठाकुर से उनकी साँठ-गाँठ थी। इस मामले में समाज कल्याण विभाग पर ज़ाहिरा तौर पर सवाल उठता है कि क्यों 1 महीने बाद इस मामले पर कोई कार्रवाई हुई? इन सब पर मंजू वर्मा के इस्तीफ़े की माँग पर नितीश और सुशील मोदी दोनों ही मंजू वर्मा के पक्ष में खड़े दिखे! और इस पूरे मामले को एक आम घटना के तौर पर पेश करने की कोशिश की गयी! शायद यह इसलिए भी है, क्योंकि ख़ुद नितीश कुमार के ही ब्रजेश ठाकुर से सम्बन्ध हैं! उनके साथ उठना-बैठना होता रहा है, लेकिन इन सब पर सुशासन बाबू चुप्पी साधे रह गये!

यह बात भी ग़ौर करने लायक है कि इतने दिनों तक मीडिया में इस ख़बर को प्रमुखता क्यों नहीं मिली? आपको बता दें कि बालिका गृह को चलाने वाला ब्रजेश ठाकुर पत्रकार भी रहा है और पत्रकारों के नेटवर्क में उसकी पैठ है। एनजीओ के साथ ही वह एक हिन्दी अख़बार प्रातः कमल, उर्दू अख़बार के एनजीओ को ब्लैकलिस्ट कर दिया गया था, इसके बावजूद उसे भिखारियों के लिए आवास बनाने के वास्ते हर महीने 1 लाख रुपये का प्रोजेक्ट दिया गया था। हालाँकि, बाद में इस प्रोजेक्ट को रद्द कर दिया गया। ब्रजेश ठाकुर के रसूख का अन्दाज़ा इस बात से भी लग जाता है कि 2013 में ही उसके एनजीओ को लेकर समाज कल्याण विभाग को नकारात्मक रिपोर्ट भेजी गयी थी, इसके बावजूद एनजीओ को हर साल निर्बाध रूप से फ़ण्ड मिलता रहा। साहू रोड में स्थित बालिका गृह के अलावा ब्रजेश ठाकुर चार और एनजीओ चलाता था, जिसके लिए केन्द्र और राज्य सरकार की तरफ़ से हर साल 1 करोड़ रुपये दिये जाते थे। पूरे मामले में समाज कल्याण विभाग का कामकाज भी सन्देह के घेरे में है क्योंकि इन गृहों को फ़ण्ड इसी विभाग से जारी किया जाता था। इससे साफ़ हो जाता है कि इसमें समाज कल्याण विभाग के अधिकारियों की मिलीभगत थी। लेकिन, अब तक इस विभाग के ज़िम्मेदार अधिकारियों की न तो शिनाख़्त हुई है और न ही कोई कार्रवाई। समाज कल्याण विभाग के डायरेक्टर (सोशल वेलफ़ेयर) राज कुमार ने सीधे तौर पर ऐसी किसी कार्रवाई से इनकार किया। एनजीओ को संचालित करने और नियमित फ़ण्ड मिलने में व ब्रजेश ठाकुर पर एफ़आईआर दर्ज होने के बाद

इस पूरे मामले में नितीश सरकार ने भले ही सीबीआई जाँच बैठा दी हो, भले ही जनता व मीडिया के दवाब में आकर मंजू वर्मा ने इस्तीफ़ा दे दिया हो, भले ही ब्रजेश ठाकुर गिरफ़्तार हो गया हो या उसके अख़बार बन्द कर दिये गये हों, लेकिन सच्चाई सिर्फ़ यह नहीं कि कोई एक व्यक्ति या प्रशासनिक लापरवाही इसके लिए ज़िम्मेदार है, बल्कि एक बड़ी सच्चाई इसके पीछे है जिसको छुपाने की कोशिश की जा रही है। हम सभी जानते है कि सीबीआई कितनी तत्परता से फ़ैसला सुनायेगी! सत्ता से संश्रय पाये कितने नेता-मन्त्री जो इस घिनौने कुकृत्य में संलिप्त थे, उनके चेहरे सामने आयेंगे भी या नहीं - यह नहीं बताया जा सकता है! अभी तक जो भी कार्रवाई हुई, वह जनता के दवाब में आकर हुई। ऐसे में हम इस न्याय-व्यवस्था पर कैसे भरोसा कर सकते हैं?

अब बात सिर्फ़ मुज़फ़्फ़रपुर की भी नहीं रही है! ख़ुद टिस की रिपोर्ट में 14 ऐसे अन्य बालिका गृह हैं, जहाँ ऐसी ही घटना की आशंका जतायी गयी है, पर अभी तक सरकार द्वारा उस पर कोई क़दम नहीं उठाया गया है। टिस की रिपोर्ट को अभी तक सार्वजनिक भी नहीं किया गया है! इसमें उच्चतम न्यायालय ने हस्तक्षेप कर बिहार सरकार से कहा है कि वह राज्य में आश्रय गृहों की टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज (टिस) द्वारा की गयी सोशल ऑडिट रिपोर्ट को सार्वजनिक करे। उन 14 बालिका गृहों के अलावा उत्तर प्रदेश के देवरिया ज़िले में भी ऐसी ही ख़बर बाहर आयी। देवरिया में 'माँ विन्ध्यवासिनी' नामक महिला प्रशिक्षण एवं सामाजिक सेवा संस्थान में बच्चियों से यौन उत्पीड़न का मामला तब सामने आया जब 10 साल की बच्ची शेल्टर होम से भागकर महिला थाना में रपट लिखवायी! यहाँ पर कुल 42 बच्चियाँ थीं, जिनमें से अभी भी 18 लापता हैं! यहाँ भी वही कहानी है। पहले 23 जून 2017 को ही संस्था की संचालिका पर केस दर्ज कराने का आदेश दिया गया था। लेकिन इसमें 1 साल लग गया। फिर ज़िला प्रोबेशन अधिकारी ने 31 जुलाई को ही केस दर्ज करने का आदेश दिया। लेकिन दर्ज होने के बाद खुलासे में 5 दिन लग गये। यही नहीं संस्था की मान्यता रद्द होने के एक साल बाद भी संस्था चलती रही। उत्तर प्रदेश के ही प्रतापगढ़ ज़िले में 'जागृति महिला स्वाधार आश्रय' में 26 महिलाएँ ग़ायब मिलीं। इसकी संचालिका रमा मिश्रा भाजपा महिला मोर्चा की ज़िलाध्यक्ष और सभासद रह चुकी हैं। भोपाल में मूक-बधिर लड़कियों से बलात्कार का मामला सामने आया। इस मामले में भी आरोपी अश्विनी शर्मा का भाजपा के मुख्यमन्त्री शिवराज सिंह चौहान से नज़दीकी सम्बन्ध बताया जा रहा है। और अब बिहार की राजधानी पटना में आश्रय गृह में रहने वाली 2 महिलाओं की मौत का मामला सामने आया है।

यह तो बस वे ही घटनाएँ हैं, जो सामने आयी हैं। अभी न जाने कितने और ऐसे बालिका गृह हैं जहाँ सत्ता की साँठ-गाँठ से ऐसे कुकृत्य अभी भी जारी होंगे! केन्द्र द्वारा कोर्ट में पेश की गयी एक रिपोर्ट के अनुसार देश के विभिन्न भागों में आश्रय गृहों में 286 लड़कों सहित 1575 बच्चों का शारीरिक शोषण या यौन उत्पीड़न किया गया है। इस पूरे मामले को हम एक सामान्य घटना के तौर पर नहीं देख सकते! महज़ कुछ ब्रजेश ठाकुर जैसे लोग या प्रशासनिक लापरवाही इसकी ज़िम्मेदार नहीं, बल्कि सत्ता में बैठे कई लोग भी शामिल हैं इसमें! सरकार द्वारा संचालित इन बालिका गृहों में यौन शोषण और यहाँ तक कि जिस्मों की ख़रीद-बिक्री की इन घटनाओ ने आज पूरी व्यवस्था पर सवाल खड़ा किया है। यह घटना मानवद्रोही, सड़ान्ध मारती पूँजीवादी

(पेज 2 पर जारी)

मालिकों के शोषण का शिकार जीएस ऑटो इण्टरनेशनल के मज़दूर

जीएस ऑटो इण्टरनेश्नल लुधियाना की एक पुरानी कम्पनी है। ढण्डारी पुल से जीटी रोड की दूसरी तरफ़ ढण्डारी कलाँ में एक़दम सड़क किनारे स्थित इस कारख़ाने में लगभग 700 मज़दूर काम करते हैं। यहाँ ट्रेक्टरों, कारों, मोटर साईकिल आदि वाहनों के पुर्जे बनते हैं। जीएस ऑटो ग्रुप 80 वर्ष पुराना है। इण्टरनेश्नल कम्पनी के साथ ही जीएस ऑटोकॉम और जीएस रेडीएटर हैं। दो वर्ष पहले इण्टरनेश्नल और ऑटोकॉम इकट्ठा थे। लेकिन इसके बाद दोनों अलग हो गये।

पिछले दिनों जीएस ऑटो इण्टरनेश्नल के मज़दूरों से बात हुई। उन्होंने मालिकों द्वारा मज़दूरों की हो रही लूट के बारे में काफ़ी कुछ बताया। इस कारख़ाने के मज़दूरों से सख़्त मेहनत का काम लिया जाता है, लेकिन पैसा बहुत कम दिया जाता है। उन्हें आठ घण्टे काम के सिर्फ़ सात-साढ़े हज़ार रुपये दिये जाते हैं। यहाँ तक कि जो मज़दूर 20-20, 25-25 वर्ष से काम कर रहे हैं, उन्हें भी इससे अधिक पैसे नहीं मिलते। स्त्री मज़दूरों को तो सिर्फ़ 4500 रुपये महीना वेतन ही दिया जाता है। बहुत-सी स्त्री मज़दूरों ने कम वेतन के कारण इस कम्पनी की नौकरी से ही तौबा कर ली। इस तरह स्पष्ट है कि श्रम क़ानूनों के मुताबिक़ न्यूनतम वेतन भी नहीं दिया जाता। मैनेजमेण्ट मज़दूरों से ओवरटाइम काम तो लेती है, लेकिन जब ओवरटाइम का पैसा देने की बात आती है, तो कह दिया जाता है कि अभी नहीं मिलेगा। अकसर ओवरटाइम के पैसों की अदायगी लटका दी जाती है। यही नहीं बल्कि वेतन बनाने में बड़ी गड़बड़ियाँ की जाती हैं। हिसाब में गड़बड़ करके वेतन कम बना दिया जाता है। पिछले तीन-चार महीनों में तो यह घपला कुछ ज़्यादा ही बढ़ गया है। वेतन और ओवरटाइम के हिसाब में गड़बड़ करके काफ़ी पैसे काट लिये जा रहे हैं। शिकायत करने पर सुनवाई भी नहीं होती। कुछ मज़दूरों को लगता है कि एसआर विभाग के राजीव शर्मा और मनोज द्वारा ही यह बेईमानी की जा रही है, लेकिन यह सब मालिकों की जानकारी में नहीं होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। अकसर मालिक मैनेजरों को आगे करके ऐसे काम करते हैं ताकि मज़दूरों को लगे कि मालिक तो बहुत अच्छे हैं, बस मैनेजमेण्ट ही गड़बड़ियाँ कर रही है। उदाहरण के तौर पर मज़दूरों ने बताया कि क्वालिटी चैकिंग का काम करने वाले एक मज़दूर के जून महीने के वेतन में से 4500 रुपये नाजायज़ तौर पर काट लिये गये। एक अन्य मज़दूर के 1000 रुपये नाजायज़ काट लिये गये। इस तरह अनेकों मज़दूरों के वेतन में से नाजायज़ कटौती कर ली गयी है। पिन गरायण्डर, यू बोल्ट, बीआरडी, गेज़ आदि अनेकों विभागों के मज़दूरों के वेतन और ओवरटाइम के पैसों में कटौती कर ली गयी है। कईयों के तो मई महीने के ओवरटाइम के पैसे तक नहीं दिये गये हैं। जब मैनेजरों को इस बारे में शिकायत की गयी तो हिसाब माँगते हैं।

मज़दूरों ने बताया कि ढाई वर्ष से कच्चे मज़दूरों को पक्का न करने की नीति अपनायी जा रही है। पहले मज़दूरों को दो-तीन महीनों में पक्का कर दिया जाता था। अगर मज़दूर मैनेजमेण्ट को पक्का करने के लिए कहते हैं तो जवाब मिलता है कि अगर काम करना है तो करो नहीं तो जाओ। इस समय कुल 700 में से लगभग आधे मज़दूर कच्चे हैं। मज़दूरों का कहना है कि असल में मालिक कारख़ाने में ठेकेदारी व्यवस्था लागू करना चाहते हैं। एक तो ईपीएफ़ का खाता सभी मज़दूरों का नहीं खुला हुआ है। जिनका है भी, उनके साथ भी घपला किया जा रहा है। घपला यह है कि मालिक का बनता हिस्सा भी मज़दूरों से ही लिया जा रहा है, जो एक बड़ी लूट है। मज़दूरों की हादसों, बीमारियों से सुरक्षा के लिए ज़रूरी है कि उन्हें इसके लिए ज़रूरी सामान दिया जाये। कम्पनी मज़दूरों को हेल्मट, बूट, मास्क वग़ैरा मुहैया नहीं करवाती। हाँ, अगर कभी कारख़ाने में किसी प्रकार की चेकिंग करनी हो तो मज़दूरों को ये चीज़ें देकर कुछ समय के लिए "सुरक्षा" दे दी जाती है। यहाँ भी हम साफ़ देख सकते हैं कि कम्पनी को सिर्फ़ मुनाफ़े की फ़िक्र है। मज़दूरों की ज़िन्दगियों की कम्पनी को कोई परवाह नहीं है।

पहले मज़दूरों को महीने में दो बार में वेतन मिलता था। 25 तारीख़ को मिलने वाले पैसे को एडवांस कहा जाता है। महीने में दो बार पैसे मिलने से मज़दूरों को पैसे सम्भालने, ख़र्चे चलाने आदि में काफ़ी मदद मिलती है। लेकिन दो वर्ष से एडवांस भी बन्द कर दिया गया है। मज़दूरों के मन में इसके बारे में भी काफ़ी रोष है।

ऐसा नहीं है कि मज़दूर चुपचाप हमेशा लूट-शोषण सहते रहे हैं। सन 2006 से लेकर अब तक पाँच बार हड़ताल हो चुकी है। एक बार हड़ताल तब हुई जब कम्पनी के एक मैनेजर द्वारा बुरे व्यवहार, तीन मज़दूरों को काम से निकाले जाने, मज़दूरों के साथ हुई बदसलूकी, मन्दी के बहाने मज़दूरों के वेतन में कटौती, कुछ मज़दूरों के दोपहर के खाने के समय की मज़दूरी काटने की कोशिश और न्यूनतम वेतन (ग्रेड) लागू न करने के खिलाफ़ मज़दूर एकजुट हुए थे। इस हड़ताल के बाद कम्पनी को मज़बूर होकर निकाले गये मज़दूरों को नौकरी पर बहाल करना पड़ा, वेतन में कटौती वापिस लेनी पड़ी। मैनेजर के ख़िलाफ़ सख़्त क़दम उठाने का वादा भी हुआ। एक बार बोनस ना मिलने के ख़िलाफ़ हड़ताल हुई। एक वर्ष पहले मज़दूरों ने तब कारख़ाना ठप्प कर दिया, जब मैनेजर मज़दूरों को काफ़ी परेशान करने लग पड़े थे। ड्यूटी से एक घण्टा पहले बुला लिया जाता था। गालियाँ दी जाती थीं। बुरे शब्द इस्तेमाल किये जाते थे। खाना खाने के लिए बैठने को जगह नहीं थी। जिन बोरियों पर बैठकर मज़दूर खाना खाते थे, वे मैनेजर ने जानबूझकर उठवा दी थीं। मज़दूरों ने तंग आकर हड़ताल कर दी। कम्पनी ने संघर्ष के आगे झुकते हुए माँगें मान लीं। खाना खाने के लिए बैठने के लिए मैट भी लाकर दिये गये।

लेकिन मज़दूरों को इसके भी आगे सोचना होगा। मज़दूरों का मालिकों के ख़िलाफ़ रोष और कभी-कभार हड़तालों के रूप में संघर्ष स्वागत-योग्य तो है, लेकिन नाकाफ़ी है। मज़दूरों को बाकायदा यूनियन के रूप में संगठित होना होगा। मालिकों की दलाल यूनियनों द्वारा की गयी दलाली के कारण लुधियाना के मज़दूरों में यूनियन बनाने के प्रति काफ़ी पूर्वाग्रह हैं। लेकिन मज़दूरों को यह समझना चाहिए कि मज़दूरों की एक सच्ची यूनियन बना पाना सम्भव है और यह बहुत ज़रूरी है। इसके बिना मज़दूर मालिकों द्वारा लूट का मुकाबला नहीं कर सकते। एक ऐसी यूनियन बनायी जानी चाहिए, जिसमें एक-दो व्यक्ति ही नेता न बनकर बैठ जायें, बल्कि कमेटी चुनी जानी चाहिए। यूनियन के सारे चन्दों-ख़र्चों का हिसाब बाकायदा सभी मैम्बरों को दिया जाये। यूनियन के फ़ैसले बहुमत के उसूल के ज़रिये आपसी सलाह-मशविरे से जनवादी ढंग से होने चाहिए। और अगर मज़दूरों को अपने अधिकारों के बारे में, समेत क़ानून श्रम अधिकारों के, जानकारी न हो तो यूनियन मज़बूत नहीं हो सकती। मज़दूरों की एक सच्ची यूनियन वही हो सकती है, जो उन्हें उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करे, जो उन्हें मालिकों द्वारा उनकी की जा रही लूट-खसोट का मुकाबला करने के लिए ज़रूरी शिक्षा दे। इसके साथ ही अन्य कारख़ानों के मज़दूरों से भी एकता बनाने के लिए आगे आना चाहिए, क्योंकि उनके भी वही हालात हैं। जब अलग-अगल कारख़ानों के मालिकों के संगठन बने हुए हों और वे आपस में मिलकर मज़दूरों को लूटने-दबाने की तरकीबें गढ़ते हों, तब अलग-अलग कारख़ानों के मज़दूरों को भी आपस में एकता बनानी होगी।

इसलिए जीएस ऑटो इण्टरनेश्नल के मज़दरों को भी अपना एक जुझारू संगठन बनाने के लिए ज़ोर लगाना चाहिए, ताकि संघर्ष को योजनाबद्ध और जुझारू ढंग से चलाया जा सके।

– लखविन्दर

उत्तर प्रदेश में केन्द्र व राज्य कर्मचारियों ने पुरानी पेंशन बहाली के लिए संघर्ष तेज किया

नयी पेंशन स्कीम के ख़िलाफ़ उत्तर प्रदेश में कर्मचारियों ने नये सिरे से संघर्ष का बिगुल फूँक दिया है। 1 जुलाई को लखनऊ में विभिन्न कर्मचारी संगठनों की बैठक करके कर्मचारी शिक्षक अधिकार 'पुरानी पेंशन बहाली' मंच का गठन किया गया। पुरानी पेंशन की बहाली, ख़ाली पदों पर भर्ती आदि विभिन्न माँगों को लेकर आयोजित की गयी इस बैठक में रेलवे, डाक विभाग, आयकर समेत केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों के कर्मचारी नेताओं ने हिस्सा लिया। राज्य कर्मचारी संयुक्त परिषद के हरिकिशोर तिवारी को मंच का संयोजक चुना गया। इस मंच में उप्र डिप्लोमा इंजीनियर्स महासंघ, राजकीय वाहन चालक महासंघ, उप्र चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी महासंघ, उप्र लेखपाल संघ, उप्र राजस्व (प्रशासनिक) अधिकारी संघ, ग्राम पंचायत अधिकारी संघ, ग्राम विकास अधिकार एसोसिएशन, मिनि. कर्मचारी महासंघ (स्वास्थ्य विभाग), उप्र जूनियर हाईस्कूल संघ, उप्र सांख्यिकीय सेवा परिसंघ, उप्र सरकार स्टेनोग्राफ़र महासंघ, वित्त विहीन माध्यमिक शिक्षक संघ - उप्र, संयुक्त पेंशनर्स समन्वय समिति समेत विभिन्न कर्मचारी संगठन शामिल हैं। ग़ौरतलब है कि 2004 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने कर्मचारियों की पेंशन को नयी पेंशन स्कीम के तहत जुआघर (शेयर मार्केट) के हवाले कर दिया था। इसका नतीजा यह है कि बहुत से ऐसे कर्मचारी जो 2004 के बाद से नौकरी में आये उनको रिटायर होने के बाद 500-1000 रुपये तक पेंशन के रूप में मिल रहे हैं। बाद में घड़ियाली आँसू बहाते हुए कांग्रेस के शासनकाल में योगी आदित्यनाथ समेत भाजपा के कई सांसदों ने सरकार को पुरानी पेंशन की बहाली के लिए पत्र लिखा था। इतना ही नहीं, 2014 के चुनाव से पहले राजनाथ सिंह ने सत्ता में आने के बाद कर्मचारियों से पुरानी पेंशन की बहाली का वादा किया था। लेकिन सत्ता में आने के बाद भाजपा और तेज़ी से पूँजीपतियों-लुटेरों की सेवा में जुट गयी और कर्मचारियों के रहे-सहे अधिकारों पर भी डाका डालने में जुट गयी। इसके तहत 97 विभागों को 34 विभागों में एकीकृत करने, अनिवार्य सेवानिवृत्ति लागू करने, ख़ाली पदों को समाप्त करने जैसे बहुत से कर्मचारी और जनविरोधी फ़ैसले लेने का काम किया गया। इन फ़ैसलों के ख़िलाफ़ कर्मचारी कोई एकजुट संघर्ष न कर सकें, इसके लिए कर्मचारियों द्वारा सरकार की आलोचना को भी अपराध के दायरे में लाने का काम किया गया।

कर्मचारी शिक्षक अधिकार 'पुरानी पेंशन बहाली' मंच की ओर से 9 अगस्त को पूरे प्रदेश-भर में ज़िला मुख्यालयों पर एक दिवसीय प्रदर्शन का आयोजन किया गया। उत्तर प्रदेश के विभिन्न ज़िलों में बिगुल मज़दूर दस्ता और दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने भी आन्दोलन के समर्थन में शिरकत की। इलाहाबाद में कचहरी पर आयोजित प्रदर्शन में दिशा छात्र संगठन की एक टोली रेल कर्मचारियों के जुलूस के साथ पहुँची। प्रदर्शन में बातचीत रखते हुए दिशा छात्र संगठन के प्रसेन ने कहा कि आज के समय में पूरे देश में कर्मचारियों की इस एकजुटता को और व्यापक बनाना होगा और इसे निरन्तरता देनी होगी। यह भी समझने की बात है कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों पर सारी पार्टियों की एक आम सहमति है। पार्टियों के बदल जाने से उदारीकरण-निजीकरण की इन नीतियों पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला है। ज़रूरी है कि इन नीतियों की मार झेल रहे कर्मचारियों, छात्रों और युवाओं को इन नीतियों के ख़िलाफ़ एक बड़े संघर्ष में उतर जाना होगा। आज की पूँजीवादी व्यवस्था वास्तव में मन्दी के एक ऐसे भँवरजाल में फँस चुकी है, जहाँ से निकल पाना उसके लिए असम्भव है। पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर को बरक़रार रखने के लिए सरकार आम जनता, कर्मचारियों को मिलने वाले अधिकारों में लगातार कटौती कर रही है। ऐसे में अपनी लड़ाई को इस पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ केन्द्रित करना होगा।

दिशा छात्र संगठन और बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने प्रदर्शन में 'जारी है हड़ताल' गीत प्रस्तुत किया। प्रदर्शन के अन्त में संयोजक अजय भारती ने मुख्यमन्त्री को ज़िलाधिकारी के माध्यम से ज्ञापन प्रेषित किया। कार्यक्रम का संचालन संयुक्त राज्य कर्मचारी परिषद के विनोद पाण्डेय ने किया।

आन्दोलन के अगले चरण में कर्मचारियों ने 29 से 31 अगस्त तक तीन दिवसीय कार्य बहिष्कार का आह्वान किया है। 8 अक्टूबर को नयी पेंशन स्कीम के ख़िलाफ़ लखनऊ में रैली का भी आयोजन किया जायेगा। मंच के नेताओं ने कहा कि अगर सरकार पुरानी पेंशन की बहाली नहीं करती तो 25 से 27 अक्टूबर तक पूर्णकालिक हड़ताल करेंगे और उसके बाद अनिश्चित कालीन हड़ताल की ओर अग्रसर होंगे।

– अमित

बेरोज़गारी की भयावह होती स्थिति

– अविनाश

सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़ 2014 से लेकर 2016 के बीच दो सालों में देश के 26 हज़ार 500 युवाओं ने आत्महत्या की। 20 साल से लेकर 30-35 साल के युवा डिप्रेशन के शिकार हो जा रहे हैं, व्यवस्था नौजवानों को नहीं जीने नहीं दे रही है। बड़े होकर बड़ा आदमी बनाने का सामाजिक दबाव, माँ-बाप, नाते-रिश्तेदार सभी लोग एक ही सुर में गा रहे हैं। जिस उम्र में नौजवानों को देश-दुनिया की परिस्थितियों, ज्ञान-विज्ञान और प्रकृति से परिचित होना चाहिए, बहसों में भाग लेना चाहिए, उस समय नौजवान तमाम शैक्षिक शहरों में अपनी पूरी नौजवानी एक रोज़गार पाने की तैयारी में निकाल दे रहे हैं और फिर भी रोज़गार मिल ही जायेगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं हैं। ऐसे में छात्र-नौजवान असुरक्षा और सामाजिक दबाव को नहीं झेल पा रहे हैं। एडमिशन न मिलने, किसी परीक्षा में सफल न होने पर आये दिन छात्र-नौजवान आत्महत्या कर रहे हैं। ऐसी घटनाओं की बाढ़-सी आ गयी है।

लाख कोशिशों के बाद भी सरकार बेरोज़गारी पर अपनी असफलताएँ छुपा नहीं पा रही है। ब्रिक्स देशों के सम्मलेन के दौरान मोदी का भाषण इसका ताजा उदाहरण है। "फ़ोर्थ इण्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन में पूँजी से ज़्यादा महत्व प्रतिभा का होगा। हाई स्किल परन्तु अस्थायी वर्क रोज़गार का नया चेहरा होगा। मैन्यूफ़ैक्चरिंग, इण्डस्ट्रियल प्रोडक्शन डिजाइन में मौलिक बदलाव आयेंगे। डिजिटल प्लेटफ़ार्म, ऑटोमेशन और डेटा फ्लोस (प्रवाह) से भौगोलिक दूरियों का महत्व कम हो जायेगा। ई-कॉमर्स, डिजिटल प्लेटफ़ार्म, मार्केट प्लेसेस जब ऐसी टेक्नोलॉजी से जुड़ेंगे, तब एक नये प्रकार के इण्डस्ट्रियल और बिज़नेस लीडर सामने आयेंगे।"

इस भाषण को सुनकर ही यह बात समझ में आ जाती है कि रोज़गार को लेकर मोदी और भाजपा की सोच क्या है? स्थायी रोज़गार की तैयारी में युवा नौजवानी के दस-पन्द्रह साल हवन कर दे रहे हैं और सरकार की तरफ़ से पकौड़ा तलने, पंचर बनाने, और पान लगाने की सलाह लगातार मिल रही है।

देश में बेरोज़गारी की भयावह स्थिति

भारत में बेरोज़गारी का आलम यहाँ तक पहुँच गया है कि क़रीब 28 से 30 करोड़ युवा बेरोज़गारी में सड़को की धूल फाँक रहे हैं और रोज़ ब रोज़ इस संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। इंजीनियरिंग कॉलेजों में प्लेसमेण्ट का सीजन शुरू हो गया है, छात्रों के चेहरों से हँसी ग़ायब-सी हो गयी है। दिन-भर लैपटॉप खोलके इण्टरव्यू के रिज़ल्ट का इन्तज़ार कर रही छात्रों की आँखें इंजीनियरिंग कॉलेजों के प्लेसमेण्ट की हालत को बयाँ करने के लिए काफ़ी है। मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद और आईआईटी बीएचयू जैसे कॉलेजों की स्थिति यह है कि एमटेक के लिए सिविल, मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल जैसी ब्रांचों के लिए अभी तक कोई भी कम्पनी नहीं आयी है, और पिछले कुछ सालों के रिकॉर्ड को देखते हुए कहा जा सकता है कि आने की कोई उम्मीद भी नहीं है और कमोबेश यही हालत बीटेक के छात्रों के लिए भी है। विश्वविद्यालय-कॉलेजों से बीए, बीएससी, एमए, एमएसी करने वाले छात्र तो पहले से ही रोज़गार पाने के सपने को ठण्डे बस्ते में डाल चुके थे, लेकिन निजीकरण और उदारीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद से आईआईटी-आईआईएम जैसे संस्थानों से निकलने वालो छात्रों को भविष्य की चिन्ता सताने लगी है। भारत में 20 प्रतिशत इंजीनियर बेरोज़गारी में धक्के खा रहे हैं। आईआईटी और एनआईटी जैसी संस्थाओं में से 2017 में मात्र 66 फ़ीसदी विद्यार्थियों का ही कैम्पस प्लेसमेण्ट हो पाया। इंजीनियरिंग करने के बाद डिग्री लटकाकर नौकरी के लिए नोएडा, गुड़गाँव, मुम्बई, हैदराबाद, बंगलुरु आदि औद्योगिक शहरों में लाखों छात्र धक्के खाते, क़िस्मत की दुहाई देते रोज़-रोज़ देखे जा सकते हैं। जिनको रोज़गार मिल भी जा रहा है, छँटनी का डर लगातार उनको सता रहा है। बँधुआ मज़दूर की हालत में जीने को मजबूर आईटी सेक्टर में काम करने वाले युवा छोटी-छोटी कम्पनियों में 10 से 15 हज़ार के वेतन पर 10-12 घण्टे तक लैपटॉप के सामने अपनी आँखें फोड़ने के लिए मजबूर हैं। अब उनके लिए कम्पनी के बाहर की दुनिया बिल्कुल बेगानी-सी हो गयी है। ऐसे में इंजीनियरिंग में एडमिशन लेने से पहले इन छात्रों के चेहरों की मासूमियत, जिसमें नौकरी और बेहतर ज़िन्दगी के ख़्वाब थे अब शीशे की तरह टूटके बिखर रहे हैं, और इन नौजवानों को ये पूरी स्थिति डिप्रेशन की तरफ़ धकेल रही है।

इन्फ़ोसिस के पूर्व प्रमुख और सह संस्थापक एआर नारायणमूर्ति का कहना है कि देश टैलेण्ट क्रंच से गुज़र रहा है। जॉब मार्किट में आने वाले 80% से ज़्यादा युवाओं की बेरोज़गारी के लिए उन्होंने देश की शिक्षा प्रणाली को ज़िम्मेदार ठहराते हुए व्यवस्था को बचाने का काम बख़ूबी किया। पिछले साल आईटी सेक्टर की टीसीएस, इन्फ़ोसिस, विप्रो, कॉग्निजेण्ट, कैपजेमिनी जैसी बड़ी कम्पनियों ने लाखों की संख्या में कर्मचारियों को बाहर का रास्ता दिखाया था, एल एण्ड टी, सिम्पलेक्स जैसे बड़ी इंजीनियरिंग कम्पनियों ने हज़ारों मज़दूरों और कर्मचारियों को बाहर कर दिया और पिछले एक वर्ष के दौरान देश के टेलीकॉम क्षेत्र में लगभग 10,000 लोगों की छँटनी की जा चुकी है। छोटी कम्पनियों से होने वाली छँटनी का तो पता ही नहीं चलता है। तमाम आईटी जानकारों का मानना है कि 2017 में हुई छँटनी 2008 की छँटनी से भी ज़्यादा है। अनुमान हैं कि 2018 में नयी भर्तियाँ 2017 के मुक़ाबले आधी से भी कम हो जायेगी।

29 जुलाई के बिज़नेस स्टैण्डर्ड में छपी एक ख़बर के मुताबिक़ देश में स्थायी नौकरियाँ घटती जा रही हैं। सबसे तेज़ी से स्थायी नौकरियाँ ऑटोमोबाइल सेक्टर में घट रही हैं। इस सेक्टर की मारुति सुज़ुकी, हीरो मोटोकोर, अशोक लेलैण्ड और टीवीएस मोटर जैसी बड़ी कम्पनियों में 2017-18 में 24,350 अतिरिक्त स्टाफ़ रखा गया। जिनमें से 23,500 से अधिक नौकरियाँ ठेके की हैं।

ऑल इण्डिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन रिपोर्टर 2017-18 की रिपोर्ट के अनुसार पिछले तीन सालों में कॉलेजों में अस्थायी प्रोफ़ेसर और प्रोफ़ेसर की कुल संख्या में 2.34 लाख की कमी आयी है। विभिन्न विभागों में हो रही भर्तियों को आन्दोलन और कोर्ट कचहरी के अनिवार्य चरण से होकर गुज़रना पड़ रहा है। यूपी में 12460 बीटीसी और 4000 उर्दू शिक्षक कोर्ट से दो-दो बार जीतने के बाद भी सरकार नियुक्ति पत्र नहीं दे रही थी। इसके ख़िलाफ़ नौजवानों ने जब आन्दोलन छेड़ा तो सरकार ने मुँह के बदले लाठियों से बात की। मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ के आश्वासन के और कोर्ट के चार हफ़्ते में नियुक्ति पत्र देने के आदेश के बाद भी सबको नियुक्ति पत्र नहीं मिला है। 20 जुलाई तक क़रीब 5000 को ही नियुक्ति पत्र मिला है और अब भी लगभग 12000 लोग नियुक्ति पत्र का इन्तज़ार कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग इंजीनियरिंग सेवाओं के लिए परीक्षा का फ़ार्म दिसम्बर 2013 में निकला था, अप्रैल 2016 में परीक्षा होती है लेकिन रिज़ल्ट अभी तक नहीं आया है। बिहार सिविल कोर्ट क्लर्क परीक्षा 2016 का रिज़ल्ट अभी तक नहीं निकला है। हाल ही में नौजवानों ने रिज़ल्ट निकालने को लेकर पटना के गाँधी मैदान में और लखनऊ में प्रदर्शन भी किया था।

जो नौकरियाँ निकल भी रही हैं, वे भी भ्रष्टाचार, धाँधली की शिकार हो जा रही हैं। छात्र तैयारी करते रह जा रहे हैं और नौकरी किसी पैसे वाले या किसी सिफ़ारिशी के बेटे-बेटियों को मिल जा रही है। परीक्षा हो जाने के बाद रिज़ल्ट नहीं निकाला जा रहा है, ज्वाइनिंग नहीं हो रहा है या फिर पूरी भर्ती प्रक्रिया को कोर्ट में धकेल दिया जा रहा है।

मोदी सरकार काफ़ी समय से विश्वभर की आर्थिक एजेंसियों के हवाले से भारत में जीडीपी ग्रोथ की ढोल पीट रही है। लेकिन विश्वबैंक की एक रिपोर्ट 'जॉबलेस ग्रोथ 2018' के मुताबिक़ 2015 में भारत में बेरोज़गारी की दर 48% थी। काम करने योग्य 100 लोगों में सिर्फ़ 52 लोगों के पास रोज़गार है। और यथास्थिति बनाये रखने के लिए हर साल क़रीब 80 लाख नौकरियों की ज़रूरत है। जबकि श्रम मन्त्रालय की रिपोर्ट के मुताबिक़ 2015-16 में रोज़गार सृजन मात्र 1.55 लाख और 2.13 लाख रहा।

इसी रिपोर्ट के अनुसार विश्व की पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बनाने का दम भरने वाला भारत रोज़गार देने के मामले में अपने पड़ोसियों से काफ़ी पीछे है।

देश	रोज़गार की दर
श्रीलंका	90
नेपाल	81
मालदीव	66
भूटान	65
बंगलादेश	60

बेरोज़गारी की भयंकर स्थिति की पहली बड़ी मिसाल सितम्बर 2017 के पहले सप्ताह में देखने में आयी, जब उत्तर प्रदेश विधानसभा सचिवालय में चपरासी के 368 पदों के लिए 23 लाख आवेदन आये थे, जिसमें लगभग 2 लाख उच्चशिक्षित युवाओं ने आवेदन किया था। पाँचवीं पास आवेदकों की संख्या महज़ 53 हज़ार थी जोकि आवेदन की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता थी। इसी साल मुम्बई में 1137 पुलिस कांस्टेबल की भर्ती के लिए 2 लाख युवाओं ने फ़ॉर्म भरा था, जिसमें 423 इंजीनियर, 167 एमबीए और 543 पोस्ट ग्रेजुएट उम्मीदवार थे।

कुछ सरकारी नौकरियों में प्राप्त आवेदनों की संख्या

विभाग	पद	आवेदन
रेलवे	90000	2,80,00,000
महाराष्ट्र पुलिस कां.	1137	2,00,000
राजस्थान वि.स. सचिवालय	18	18,000
ज़िला न्यायालय देवास चतुर्थ श्रेणी	34	8,000
पश्चिम बंगाल ग्रुप डी	6000	25,00,000

ये आँकड़े अपने-आप ही भारत में बेरोज़गारी की हालत बयान करने के लिए काफ़ी हैं।

बेरोज़गारी पर नोटबन्दी और जीएसटी का प्रभाव

8 नवम्बर 2016 की रात को मोदी ने अचानक से 500 और 1000 रुपये के नोट को बन्द करने की घोषणा करते हुए इसे काले धन पर हमला क़रार दिया था और यह भी बताया कि इससे काले धन को ख़तम कर टैक्स वसूली बढ़ेगी। पूँजीपतियों के टुकड़ो पर पलने वाले तमाम मीडिया संस्थानों के द्वारा झूठी ख़बर फैलायी गयी कि नोटबन्दी के फ़ैसले से लगभग 5 लाख करोड़ का काला धन बर्बाद हो जायेगा जिसका इस्तेमाल सरकार बड़ी-बड़ी कल्याणकारी योजनाओं में करेगी। साथ ही साथ यह भी ख़ूब प्रचारित किया गया कि इससे देश से आतंकवाद, भ्रष्टाचार और नकली नोटों का तो बिल्कुल सफाया ही हो जायेगा। समय बीतने के साथ जब मोदी सरकार के इस फ़ैसले पर सवाल उठने लगे तो सरकार ने बहुत बेशर्मी के साथ गोल पोस्ट बदलते हुए कैशलेस लेनदेन की बात करने लगी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस समय देश में कैश परिचालन का लगभग 86.4% हिस्सा 500 और 1000 रुपये के नोटों के रूप में ही होता था तथा देश में 98% लेनदेन और लगभग 93% असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के वेतन का भुगतान कैश में होता था। नोटबन्दी के इस फ़ैसले से सकल घरेलू उत्पाद में 45% हिस्सा रखने वाले असंगठित क्षेत्र, जिनमें छोटे उद्योग-धन्धे, मध्यम किसान, दूकानदार आदि आते हैं, लगभग बर्बाद हो गये क्योंकि इन उद्योगों के लिए ज़रूरी कच्चा माल, खाद, बीज, कीटनाशक आदि नगद पूँजी से आता है, जिससे इस सेक्टर में काम करने वाले लाखों लोग बेरोज़गार हो गये। नोटबन्दी के कुछ ही दिन बाद से ख़बर आने लगी थी कि सूरत और लुधियाना में कपड़ा बनाने वाले लगभग 22000 छोटे-छोटे उद्योग चौपट हो गये थे। इसी तर्ज़ पर बनारस के बुनकरों का काम, मुरादाबाद के बर्तनों का उद्योग, बंगाल का चाय का उद्योग आदि छोटे-छोटे काम-धन्धे 50 से 70 प्रतिशत तक ठप पड़ गये। काम बन्द होने से लाखों मज़दूर बेरोज़गार हो गये और उनके भूखों मरने की नौबत आ गयी है और लगभग यही हालत ग्रामीण और खेतिहर मज़दूरों की भी है। दूसरी तरफ़ बड़े नोटों को अचानक इस तरह से बन्द कर देने से पूरे देश में अफ़रा-तफ़री मच गयी। काम-धन्धा, दफ़्तर, मज़दूरी छोड़ लोग बैंकों के बाहर अपनी ख़ून-पसीने की कमाई के लिए लम्बी-लम्बी लाइनों में खड़े ठण्ड में ठिठुरते रहे और इस दौरान सैकड़ों लोगों की मौत भी हो गयी। जीएसटी की वजह से भी बहुत सारे छोटे उद्योग-धन्धे चौपट हो जाने से हज़ारों लोग उजड़कर सड़कों पर आ गये।

ख़ाली पदों की है भरमार फिर भी युवा है बेरोज़गार

5 अगस्त के टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में छपी ख़बर के अनुसार केन्द्र और राज्य सरकारों के पास 24 लाख (केन्द्र और राज्य सरकारों के कर्मचारी चयन आयोगों के आँकड़ों को छोड़कर) नौकरियाँ ख़ाली पड़ी हुई हैं। देश के युवा दिन-रात एक करके तैयारी कर रहे हैं और नौकरी निकलने की बाट जोह रहे हैं, लेकिन नौकरियाँ होते हुए भी नहीं दी जा रही हैं या देने में देरी की जा रही है। 10 लाख नौकरियाँ तो सिर्फ़ प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में हैं। लाखों नौजवान टीईटी और बीएड करके घर बैठे हैं। पुलिस में 5 लाख 40 हज़ार पद ख़ाली पड़े हैं। अर्धसैनिक बलों में 61509, सेना में 62084, पोस्टल विभाग में 54263, स्वास्थ्य केन्द्रों पर 1.5 लाख, आँगनवाड़ी वर्कर में 2.2 लाख, एम्स में 21470, अदालतों में 5,853 पद ख़ाली पड़े हैं। देश के 47 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में लगभग 7 हज़ार प्रोफ़ेसर के पद ख़ाली हैं। वहीं दूसरी तरफ़ 363 राज्य विश्वविद्यालयों में लगभग 63 हज़ार प्रोफ़ेसर नहीं हैं। औसतन इंजीनियरिंग कॉलेज में 27% प्रोफ़ेसर के पद ख़ाली हैं। इन सबके अलावा रेलवे में 2.4 लाख नौकरियाँ हैं।

अगर 24 लाख में केन्द्र और राज्य सरकारों के कर्मचारी चयन आयोगों के आँकड़ो को शामिल कर लिया जाये तो यह आँकड़ा 50 लाख से ज़्यादा पहुँच जायेगा।

भारत में हर पाँच साल पर बदलने वाली सरकारें नये रोज़गार पैदा करने के मामले में ही फ़ेल

(पेज 10 पर जारी)

असम के 40 लाख से अधिक लोगों से भारतीय नागरिकता छिनी

हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकतावादियों, क्षेत्रवादियों, नस्लवादियों, अन्ध-राष्ट्रवादियों की साज़िशों का शिकार हुए बेगुनाह लोग

भारतीय राज्य ने असम के 40 लाख से अधिक लोगों से भारतीय नागरिकता छीन ली है। वे अब क़ानूनी तौर पर किसी देश के नागरिक नहीं रहे! गुज़री 31 जुलाई (2018) को असम के राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (रा.ना.र.) यानी एनआरसी का अन्तिम मसविदा जारी किया गया है। इसमें दर्ज होने के लिए 3.29 करोड़ निवेदन दिये गये थे। उनमें से सिर्फ़ 2.89 करोड़ निवेदन ही माने गये हैं। जिन निवेदनों को नहीं माना गया, उन चालीस लाख से अधिक लोगों में बहुसंख्या मुसलमानों की है, जबकि हिन्दू भी इस सूची में काफ़ी संख्या में शामिल हैं। भारतीय राज्य के मुताबिक़ ये लोग "विदेशी" हैं। दशकों ही नहीं बल्कि सैकड़ों सालों से भारत में रहते आये परिवारों के ये लोग भारतीय पूँजीवादी राजनीति की घिनौनी साज़िशों के चलते पराये बना दिये गये हैं। ये लोग हिन्दुत्ववादी धार्मिक कट्टरपन्थ, अन्ध-राष्ट्रवाद, क्षेत्रवाद, नस्लवाद की चक्की में पिस रहे हैं।

सबसे अधिक, रा.ना.र. बंगाली मुसलमानों के ख़िलाफ़ है और यह आरएसएस/भाजपा की सभी मुसलमानों के ख़िलाफ़ चलायी जा रही साम्प्रदायिक नफ़रत फैलाने की मुहिम का हिस्सा है। अगले वर्ष के शुरू में होने जा रहे लोकसभा चुनावों से आधा वर्ष पहले रा.ना.र. का जारी किया जाना स्पष्ट रूप में इस साम्प्रदायिक मुहिम के सहारे हिन्दू वोट बैंक पक्का करने व बढ़ाने की केन्द्र सरकार पर क़ाबिज़ हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थी भाजपा की घिनौनी साज़िश है। कोई कह सकता है कि रा.ना.र. का काम तो सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में हुआ है। यहाँ यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट की निगरानी का अर्थ केन्द्र व राज्य सरकार का इस काम पर असर या दख़ल का न होना नहीं है। दूसरी बात, न्यायपालिका को आरएसएस/भाजपा काफ़ी हद तक अपनी मुट्ठी में कर चुकी है।

असम में बंगाली भाषाई (चाहे वे भारतीय हों या बंगलादेशी) लोगों के ख़िलाफ़ क्षेत्रवादी/नस्लवादी नफ़रत लम्बे समय से फैलाई जाती रही है और इसका लाभ असम गण परिषद (एजीपी), बोडोलैण्ड पीप्लज़ फ्रण्ट (बीपीएफ़), भाजपा व कांग्रेस जैसी पार्टियाँ और उलफ़ा जैसे आतंकवादी संगठन लेते रहे हैं। भाजपा/आरएसएस की हमेशा से कोशिश रही है कि इस नफ़रत को मुसलमानों तक केन्द्रित कर दिया जाये। भाजपा ने सन् 2016 के असम विधानसभा चुनाव से पहले यह वादा किया था कि जितने भी "विदेशी" हिन्दू बंगाली है, उन्हें भारतीय नागिरकता दी जायेगी, कि हिन्दुओं का भारत में हमेशा स्वागत किया जायेगा लेकिन बंगाली मुस्लिमों और अन्य विदेशी मुसलमानों को भारत से बाहर निकाला जायेगा। बंगलादेश, पाकिस्तान व अफ़ग़ानिस्तान से भारत आये हिन्दुओं को भारतीय नागरिकता देने सम्बन्धी एक बिल भी संसद में लटका हुआ है। हिन्दू बंगालियों को नागरिकता देने की वायदे करके भाजपा ने ख़ूब वोटें हासिल कीं। और असम में भाजपा, एजीपी, बीपीएफ़ आदि पार्टियों के अवसरवादी गठबन्धन की सरकार बनी। इस अवसरवादी गठबन्धन ने हिन्दू बंगालियों को नागरिकता देने के वादों का भी फ़ायदा उठाया और उनके सहित बंगाली मुसलमानों को भारतीय न मानने और सभी बंगालियों को असम से बाहर निकालने के क्षेत्रवादी-नस्लवादी नारों का भी फ़ायदा उठाया। भाजपा के मन्त्री और अन्य नेता सरेआम प्रचार करते हैं कि हिन्दू बंगालियों को असम में रहने दिया, ताकि असम में हिन्दुओं की बड़ी बहुसंख्या बनी रहे। वे क्षेत्रवादी-नस्लवादी पार्टियों को इसके लिए मना रहे हैं कि सिर्फ़ बंगाली मुसलमानों को ही बंगलादेश भेजने की बात करें। इसके लिए एक हद तक सहमति बनती भी जा रही है। भविष्य में ऊँट किस करवट बैठता है, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा लेकिन इतना पक्का है कि असम में मुसलमानों के ख़िलाफ़ उनके धर्म, भाषा, क्षेत्र, नस्ल के आधार पर आने वाले समय में दमन काफ़ी बढ़ेगा। हिन्दू बंगालियों को भी बड़े स्तर पर दमन का सामना करना पड़ेगा। असम में अन्य राज्यों से आये लोगों पर भी दमन बढ़ेगा।

असम में इतने बड़े स्तर पर लोगों को विदेशी क़रार दिये जाने से जो स्थिति बनी है, उसका असर सिर्फ़ इन ही व्यक्तियों और उनके परिवारों तक ही सीमित नहीं बल्कि इससे असम में अशान्ति के जो गम्भीर हालात पैदा हो गये हैं, उसके चलते असम के बाक़ी लोग भी बड़े स्तर पर प्रभावित हो रहे हैं और होंगे। समूचे देश में ही साम्प्रदायिक, क्षेत्रवादी, अन्ध-राष्ट्रवाद की नफ़रत की आग और भड़केगी जिसका सबसे अधिक फ़ायदा हिन्दुत्ववादी फासीवादी आरएसएस/भाजपा को मिलेगा। पूरे देश में भाजपा 'विदेशी मुसलमानों को बाहर निकालने' के मुद्दे का फ़ायदा उठा रही है। इसके नेता भड़काऊ बयान दे रहे हैं। तेलंगाना से भाजपा विधायक टी.राज. सिंह लोथ ने 31 जुलाई को भड़काऊ बयान देते हुए कहा कि बंगलादेशी और रोहंगिया मुसलमान अगर भारत छोड़कर नहीं जाते, तो उन्हें गोली मार दी जानी चाहिए। मेघालय में आतंकवादी संगठनों ने ग़ैरक़ानूनी चेकपोस्टें बना कर बंगाली दिखने वाले हरेक व्यक्ति से नागरिकता से जुड़े दस्तावेज़ माँगने शुरू कर दिये हैं। अरुणाचल प्रदेश में प्रवासियों के ख़िलाफ़ 14 दिन का अभियान चलाया गया है। मणिपुर में सन् 1951 के आधार पर नागरिकों की सूची तैयार करने की बात कही जा रही है। बंगालियों के ख़िलाफ़ इन राज्यों में नफ़रत भड़काने की मुहिम तेज़ हो गयी है।

सन् 1947 में लोगों ने बँटवारे का सदमा झेला। लाखों लोग मारे गये, बेघर कर दिये गये। पूर्वी पाकिस्तान (मौजूदा बंगलादेश) और भारत की सरहद की तरफ़ भी यही कुछ हुआ। बड़ी संख्या में हिन्दू बंगालियों को भारत की तरफ़ आना पड़ा और मुसलमानों को पूर्वी पाकिस्तान की तरफ़ आना पड़ा। बहुत से लोगों की ज़मीन-जायदाद, रिश्तेदार दूसरी तरफ़ रह गये। उनका सरहद से इधर-उधर आना-जाना जारी रहा। सन् 1951 में असम में राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर बना। इसमें उस समय तक असम में रह रहे लोगों का नाम दर्ज हुआ और उन्हें भारतीय नागरिक माना गया। लेकिन इसके बाद भी लोगों का आना-जाना जारी रहा। 25 मार्च 1971 को पूर्वी पाकिस्तान को पाकिस्तान से तोड़कर बंगलादेश बना दिया गया। इससे पहले और बाद में बंगलादेश में बने गम्भीर हालात के चलते बहुत से बंगाली मुसलमानों और हिन्दुओं को भारत में प्रवास करना पड़ा। इनमें से अधिकतर लोग बहुत ग़रीब थे। वे भारत में कोई "गड़बड़" करने या "अन्दरूनी सुरक्षा को ख़तरा पैदा करने" नहीं आये थे, बल्कि रोज़ी-रोटी कमाने व यहाँ बसने आये थे। भारत सरकार ने भी उन्हें इधर आने से नहीं रोका, क्योंकि यहाँ पूँजीवादी व्यवस्था को सस्ते मज़दूरों की ज़रूरत थी।

असमियता ने नाम पर प्रवासियों के ख़िलाफ़, जिनमें बंगलादेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल आदि राज्यों से आये हिन्दू व मुसलमान शामिल हैं, नफ़रत तो काफ़ी पहले से ही फैलायी जा रही थी। सन् 1961 में सिलचर में बंगाली विरोधी क़त्लकाण्ड हुआ। बराक घाटी में बंगाली भाषी मूल निवासियों की बड़े पैमाने पर हत्याएँ हुईं। उन्हें अपनी मातृभाषा बंगला छोड़ने पर मज़बूर किया गया। नेल्ली व सिलापाथोर के ग़ैरअसमिया निवासियों पर भी अत्याचार हुए। उलफ़ा नाम के नस्लीय आतंकवादी संगठन ने ग़ैर-असमिया लोगों के ख़िलाफ़ बड़े स्तर पर हिंसा की। छः वर्ष यानी सन् 1979 से 1985 तक असम में "बाहरी लोगों" के ख़िलाफ़ बड़े स्तर पर आन्दोलन चला। माँग की गयी कि असम से बाहरी लोगों को बाहर निकाला जाये, ख़ासकर बंगालियों को बंगलादेश भेजा जाये जो चाहे मुसलमान हों चाहे हिन्दू। सन् 15 अगस्त 1985 में असम के नस्लवादी संगठन ऑल असम स्टूडेण्टस यूनियन (आसू) व केन्द्र की राजीव सरकार के बीच समझौता हुआ। इस समझौते को असम समझौते के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के मुताबिक़ जो भी लोग 24 मार्च 1971 तक भारतीय नागरिकता का सबूत देते हैं, उन्हें भारतीय माना जाये, बाक़ियों को बंगलादेश भेजा जायेगा। सन् 1951 के राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर को अपडेट करने की बात कही गयी। साथ ही यह भी बेहद जनविरोधी समझौता हुआ कि सन् 1961 से 1971 के बीच बंगलादेश से असम आने वाले व्यक्तियों को न तो वोट डालने का अधिकार होगा, न यहाँ ज़मीन-जायदाद ख़रीदने का। सन् 2005 में सरकार ने रा.ना.र. अपडेट करने का फ़ैसला किया। असम समझौते के 40 वर्ष बाद! चार दशक से भी अधिक भारत में रहने वाले लोग भी इसके लिए विदेशी हैं! यह सरासर बेइंसाफ़ी है।

हमारा मानना है कि भारत में बसे सभी लोग भारतीय नागरिकता के हक़दार है। भारत की जनसंख्या बढ़ने के कारण अर्थव्यवस्था पर बोझ बढ़ने व अन्दरूनी सुरक्षा को ख़तरा आदि बातें सिर्फ़ नफ़रत पैदा करने के लिए व बुनियादी मुद्दों से जनता का ध्यान हटाने के लिए किया जाना वाला कुत्साप्रचार है।

रा.ना.र. तैयार करने में इससे सम्बन्धित नियम-क़ानूनों की भी घोर उल्लंघना की गयी है, ताकि अधिक से अधिक बंगाली ख़ासकर मुसलमान इससे बाहर रखे जायें। नागरिकता साबित करने के लिए ग्राम पंचायत द्वारा मिले दस्तावेज़ों में से आधे के क़रीब माने ही नहीं गये जबकि सुप्रीम कोर्ट का आदेश था कि ये माने जाने चाहिए। अगर बैंक खाते और दसवीं की अंक-पत्री में किसी का नाम अलग-अलग ढंग से लिखा गया है तो भी उसे ग़ैर-भारतीय बना दिया गया। अगर जन्म प्रमाणपत्र और अन्य किसी दस्तावेज़ में लिखे नाम में कोई फ़र्क़ है तो भी उसे ग़ैर भारतीय माना गया। किसी अन्य राज्य से पढ़ी और असम में विवाहित स्त्री भी ग़ैर-भारतीय। कम्प्यूटर सिस्टम ने ग़लत ढंग से जानकारी का डाटा उठा लिया तो ग़ैर भारतीय। कम पढ़े-लिखे या अनपढ़ लोगों से अफ़सर ढंग से बात ही नहीं करते थे और उन्हें अफ़सरों के सामने अपना पक्ष पेश करने के लिए किसी की मदद भी नहीं लेने दी जाती थी। नतीजा यह है कि परिवार में सभी का नाम है, लेकिन पिता या दादा का नहीं है। किसी जगह पति-पत्नी का नाम है बच्चों का बाहर कर दिया गया है। असम में सरकारी नौकरी कर रहे, रिटायर हो गये ऐसे भी लोग ग़ैर भारतीय ठहरा दिये गये, क्योंकि उन्होंने पढ़ाई किसी अन्य राज्य से की थी। ग़रीबों, आम जनता की तो सुनी ही कहाँ जानी थी, हालात ये हैं कि पूर्व राष्ट्रपति फ़रूख़दीन के परिवार के सदस्यों और विधायकों तक के नाम रा.ना.र. में से ग़ायब हैं!

बवाल होने के बाद कहा जा रहा है कि रा.ना.र. का अभी मसविदा ही जारी किया गया है, कि सूची से बाहर रह गये लोगों को एक और अवसर दिया जायेगा। लोगों को शिकायतें दर्ज कराने, अन्य दस्तावेज़ जमा करने, जाँच-पड़ताल करने का एक और अवसर दिया गया है। इसके लिए एक महीना रखा गया है। (चालीस लाख लोग और एक महीना!)। मान लीजिए, इनमें से लाख-दो लाख या 10-20 लाख लोग भी रा.ना.र. सूची में शामिल कर लिये जाते हैं, तो भी शेष का क्या बनेगा?! उधर बंगलादेश सरकार ने भी कह दिया है कि भारत में उनका कोई नागरिक नहीं है। वैसे अगर बंगलादेश कुछ लोगों को लेने के लिए तैयार हो भी जाये तो दशकों से भारत में रह रहे लोगों को उजाड़ना किसी भी तरह इंसाफ़ नहीं है। नागरिकता से वंचित लोगों को भारत में वोट का अधिकार नहीं होगा। उन्हें किसी जनकल्याण योजना का लाभ नहीं मिलेगा, उनका अपनी सम्पत्ति पर अधिकार ख़त्म हो जायेगा। उन्हें बड़े स्तर पर निशाना बनाया जायेगा। इसकी भी काफ़ी सम्भावना है कि उन्हें जेलों में डाल दिया जाये।

इन लोगों का क्या बनेगा इसका अन्दाज़ा उन लोगों की हालत से लगाया जा सकता है, जिन्हें असम में विदेशियों की शिनाख़्त के लिए बनायी गयी विशेष अदालतों द्वारा विदेशी घोषित किया गया है। 1985 से लेकर अब तक 85 हज़ार से भी अधिक लोगों को विदेशी घोषित किया जा चुका है। इनमें मुसलमान भी है और हिन्दू भी। मर्द भी और स्त्रियाँ भी। ऐसे लोग जो गिरफ़्तार किये गये हैं उन्हें जेलों में ही बनाये गये शरणार्थी शिविरों में रखा गया है। इन शिविरों की हालत जेलों से भी बुरी है। रिहाई की कोई उम्मीद इन्हें नज़र नहीं आती।

जनवादी अधिकार संगठनों व मान अधिकार कार्यकर्ताओं के यहाँ जाने की रोक लगायी गयी है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अल्पसंख्यकों के विशेष निरीक्षक रहे हर्ष मन्दर द्वारा इन जेलों का दौरा किया गया था और एक रिपोर्ट तैयार की गयी थी। इस रिपोर्ट के सुझावों पर सरकार द्वारा कोई कार्रवाई न किये जाने से ख़फ़ा होकर उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया था और रिपोर्ट सार्वजनिक कर दी थी। उन्होंने एक लेख में लिखा है कि "ये नज़रबन्दी कैम्प मानवीय सिद्धान्तों के लिहाज़ से और क़ानूनी पक्ष से भी, एक डरावनी तस्वीर पेश करते हैं"। इन शिविरों में बन्द किये गये अधिकतर लोगों को कोई क़ानूनी मदद तक नहीं दी जा रही। अदालतों ने इनका पक्ष तक नहीं सुना है। बलात्कार व क़त्ल जैसे संगीन अपराधों तक के मामलों में बचाव के लिए क़ानूनी मदद दी जाती है, लेकिन ये लोग बिना कोई अपराध किये जेलों में सड़ रहे हैं।

इन लोगों को सिर्फ़ इसलिए बन्द किया हुआ है क्योंकि वे क़ानूनी नोटिस जारी होने पर अदालत के सामने पेश नहीं हुए। लोगों का कहना है कि उन्हें नोटिस मिले ही नहीं। इन्हें अपने परिवार के सदस्यों से भी कम ही मिलने दिया जाता। आम जेलों में क़ैदी को सैर करने, काम करने, खुले में आराम करने आदि की छूट होती है, लेकिन इन नज़रबन्द लोगों को दिन में भी बैरकों से बाहर नहीं निकाला जाता। पति-पत्नी और छः वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों को अपने माता-पिता से अलग रखा जा रहा है। पिछले समय में ट्रम्प सरकार द्वारा ग़ैरक़ानूनी बच्चों को उनके माता-पिता से अलग कर देने का काफ़ी बवाल मचा था। लेकिन असम के इन नज़रबन्दी शिविरों के नाम पर चल रही जेलों में लम्बे समय

(पेज 14 पर जारी)

साल-दर-साल बाढ़ की तबाही : महज़ प्राकृतिक आपदा नहीं मुनाफ़ाखोर पूँजीवादी व्यवस्था का कहर!

(पेज 1 से आगे)

तबाही से उबर जायेगा, हालाँकि इसके दाग़ लम्बे समय तक बने रहेंगे। लेकिन भारत में बाढ़ की यह विनाशलीला पहली बार नहीं हुई है, और न ही यह आख़िरी बार होगी। हर साल देश का कोई-न-कोई हिस्सा बाढ़ का प्रकोप झेलता है। जुलाई और अगस्त के महीने बाढ़ के महीने होते हैं। हर साल सैकड़ों या हज़ारों लोगों की जान जाती है, लाखों विस्थापित होते हैं और खरबों की सम्पत्ति और संसाधन नष्ट होते हैं। लाखों हेक्टेयर की फ़सलें बर्बाद हो जाती हैं। न जाने कितने ग़रीब परिवार इस तबाही से सारी ज़िन्दगी नहीं उबर पाते हैं। असंख्य ग़रीब क़र्ज़ों के बोझ तले दब जाते हैं।

आज़ादी के बाद के 71 वर्षों के दौरान बाढ़ के नाम पर खरबों रुपये की लूट भले ही हुई हो, लेकिन इसकी तबाही कम करने और लोगों के जान-माल के बचाव के वास्तविक इन्तज़ाम बहुत कम हुए हैं। शुरू में नदियों के किनारे तटबन्ध बनाये जाने से नदी किनारे के इलाक़ों में बाढ़ का ताण्डव कुछ कम हुआ लेकिन बेलगाम पूँजीवादी विकास के कारण कुछ ही वर्षों में बाढ़ पहले से भी ज़्यादा भयंकर होकर तबाही मचाने लगी। जंगलों की अन्धाधुन्ध कटाई, नदियों के किनारे बेरोकटोक होने वाले निर्माण-कार्यों, गाद इकट्ठा होने से नदियों के उथला होते जाने, बरसाती पानी की निकासी के क़ुदरती रास्तों के बन्द होने, शहरी नालों आदि को पाट देने जैसे अनेक कारणों ने न केवल बाढ़ की बारम्बारता बढ़ा दी है, बल्कि शहरों में होने वाली तबाही को पहले से कई गुना बढ़ा दिया है। पूँजीवादी विकास की अन्धी दौड़ के चलते अब शहर भी बाढ़ों से बचे नहीं रहते। पहले की तरह अब बाढ़ सिर्फ़ गाँवों में ही नहीं आती बल्कि शहरों को भी अपनी चपेट में ले लेती है। पूँजीवाद गाँव और शहर के बीच के भेद को इसी तरह मिटाता है!

सच तो यह है कि बाढ़ के आने का पता बहुत पहले से ही चल जाता है, लेकिन इसके नुक़सान को रोकने और बाढ़ आने के पहले लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने का कोई इन्तज़ाम नहीं किया जाता है। दरअसल इन सत्तर सालों में बाढ़ का अपना अर्थशास्त्र और अपनी राजनीति विकसित हुई है जिसका करोड़ों बाढ़ पीड़ितों की मदद और बचाव से कोई लेना-देना नहीं होता। हर साल बाढ़ के आने के साथ ही हवाई दौरों का सिलसिला शुरू होता है, आरोपों-प्रत्यारोपों की राजनीति शुरू होती है, अरबों-खरबों के बजट की मारा-मारी मचती है, अपनी-अपनी रोटी सेंकने के लिए चुनावी राजनीति के तमाम खिलाड़ी मैदान में कूद पड़ते हैं। अगर बाढ़ का पूर्वानुमान लगने पर इसके प्रभाव को नियन्त्रित कर लिया जाये और जान-माल की होने वाली हानि को रोक दिया जाये तो वह अरबों रुपये की रक़म तमाम मन्त्रियों और नौकरशाहों की और साथ ही स्वयंसेवी संगठनों और ठेकेदारों की जेबें गर्म नहीं कर पायेगी। बाढ़ की पूरी राजनीति चुनावों में काफ़ी काम आती है। सुपर कम्प्यूटरों और उपग्रहों से युक्त मौसम के पूर्वानुमान की बेहद उन्नत तकनीक आज मौजूद है जिससे आने वाली भीषण वर्षा या तूफ़ान के संकेत कुछ दिन पहले ही मिल जाते हैं। बाढ़ के फैलाव को रोकने की समझ, विशेषज्ञता और तकनीक आज मानवता के पास है। लेकिन इस पर अमल करने के बजाय इन्तज़ार किया जाता है कि हर साल बाढ़ आये, लोग डूबें, बर्बाद हों, बेघर हों, फ़सलें नष्ट हों, फिर तमाम चुनावी घड़ियाल उस पर आकर आँसू बहायें, स्वयंसेवी संगठनों को "जनसेवा" करने का और थोड़ी अपनी सेवा भी कर लेने का मौक़ा मिले और नौकरशाही भी बाढ़ राहत की भारी राशि का भरपूर इस्तेमाल कर सके!

सरकारें और मीडिया साल-दर-साल हमको बताते रहते हैं और ज़्यादातर लोग अज्ञानतावश मान भी लेते हैं कि बाढ़ तो प्रकृति का क़हर है; इसमें भला किसी की क्या ग़लती! सरकार बेचारी क्या करे? लेकिन अगर हम बाढ़ के कारणों पर एक निगाह डालें तो हमें पता चल जाता है कि यह महज़ प्राकृतिक आपदा नहीं है। यह पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़े की अन्धी हवस और तथाकथित विकास के नाम पर पर्यावरण की तबाही की एक सज़ा है जिसे सबसे अधिक उन लोगों को भुगतना पड़ता है, जिनकी कोई ग़लती नहीं होती।

सबसे पहले हम केरल के ही उदाहरण को लें। इस साल बाढ़ ने जिन इलाक़ों को प्रभावित किया, उनमें से ज़्यादातर वे हैं जिन्हें पश्चिमी घाट पारिस्थितिकी विशेषज्ञ पैनल ने पारिस्थितिकी की दृष्टि से संवेदनशील बताया था। जाने-माने पर्यावरणविद माधव गाडगिल की अध्यक्षता में बनी इस समिति ने पश्चिमी घाट के 1 लाख 40 हज़ार वर्ग किलोमीटर में फैले क्षेत्र में पर्यावरणीय तबाही रोकने के लिए कई सुझाव दिये थे। इनमें खनन और पत्थरों की खुदाई, ग़ैर-वनीय उपयोग के लिए ज़मीन के इस्तेमाल, बहुमंज़िला इमारतों के निर्माण, पेड़ों की कटाई आदि पर सख़्त पाबन्दियाँ लगाने के सुझाव दिये गये थे। पश्चिमी घाट का क्षेत्र छह राज्यों, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गोआ और गुजरात में फैला हुआ है। 2011 में दी गयी इस रिपोर्ट को केरल सरकार ने ख़ारिज़ कर दिया और अन्य राज्य सरकारों ने भी इसका कड़ा विरोध किया। जैसाकि माधव गाडगिल ने हाल में मीडिया से इस बार बड़े पैमाने पर हुए भूस्खलनों और पहाड़ियों के ढहने का एक बड़ा कारण अन्धाधुन्ध पत्थरों की खुदाई और पेड़ों की कटाई है। उन्होंने इसे "मानव-निर्मित आपदा" करार दिया। हालाँकि इसे "पूँजीवादी दानव-निर्मित आपदा" कहना ज़्यादा सही होगा। कई और पर्यावरणविदों ने भी धुआँधार खनन, कटाई, पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर बड़े पैमाने पर बहुमंज़िला होटलों आदि के निर्माण और निजी कम्पनियों द्वारा वन भूमि की अवैध ख़रीद आदि की ओर भी उँगली उठायी है। केरल में भारी बारिश की आशंका को देखते हुए 30 बाँधों से धीरे-धीरे पानी छोड़ने का काम भी नहीं किया गया, जिसकी वजह से जलस्तर बढ़ने पर एकदम से पानी का सैलाब आ गया।

इसी तरह, 26 जुलाई 2005 को मुम्बई में बादल फटने से आयी बाढ़ में 1200 से ज़्यादा लोग मारे गये थे। उस वक़्त केन्द्र और राज्य सरकारों ने लम्बे-चौड़े कस्मे-वादे किये कि अब ऐसी आपदा दुबारा नहीं होने दी जायेगी और आधारभूत ढाँचे में सुधार किये जायेंगे। जनता की गाढ़ी कमाई के हज़ारों करोड़ रुपये बहाये गये, और बार-बार घोषणाएँ की गयीं कि शहर अब कैसी भी भारी वर्षा के लिए तैयार है। मगर हुआ क्या? पिछले ही साल, 29 अगस्त को अचानक मुम्बई में 350 मिमी बारिश हुई जो 26 जुलाई 2005 को हुई 900 मिमी बारिश से बहुत कम थी। लेकिन इसने जो तबाही मचायी, उसकी याद अभी लोगों को होगी क्योंकि अभी इसे ज़्यादा समय नहीं हुआ। वजह क्या है? मुम्बई की तटरेखा और अरब सागर के बीच फैले घने मैनग्रोव जंगल बाढ़ के विरुद्ध एक क़ुदरती अवरोध का काम करते हैं, ज़मीन की कटान को रोकते हैं और समुद्री खारे पानी से भूमि को होने वाले नुक़सान से बचाव करते हैं। वे किसी भी अन्य पारिस्थितिकी तन्त्र के मुकाबले आठ गुना ज़्यादा कार्बन डाई-ऑक्साइड सोखते हैं। लेकिन बिल्डरों के दबाव में और मुम्बई शहर के फैलाव के लिए इन जंगलों को बड़े पैमाने पर काट डाला गया। मीठी नदी, ओशिवारा नदी और ठाणे क्रीक से बाढ़ का पानी निकल जाया करता था। इन सभी के साथ घने मैनग्रोव जंगल हैं। लेकिन इन सभी को व्यवस्थित ढंग से तबाह किया गया है। मैनग्रोव जंगलों से भरे मीठी नदी के मुहाने को तबाह करके वहाँ बान्द्रा-कुर्ला कॉम्प्लेक्स बना दिया गया। अब नवी मुम्बई हवाई अड्डा बनाने के लिए इससे भी बड़ी पर्यावरणीय विनाशलीला रची जाने वाली है।

केदारनाथ और उत्तरकाशी में 2013 में आयी बाढ़ से मची भयंकर तबाही का सबसे बड़ा कारण भी उस पूरे इलाक़े में नाजुक पर्यावरण का ख़याल किये बिना "विकास" के नाम पर अन्धाधुन्ध कटायी, रिज़ॉर्ट और होटलों, सैकड़ों गाड़ियों की पार्किंग आदि बनते चले गये। पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ने की चेतावनी देने वाले विशेषज्ञों की रिपोर्टों को कचरे में डाल दिया गया। पहाड़ों में अन्धाधुन्ध निर्माण और तथाकथित विकास की गतिविधियों से ग्लेशियरों-नदियों के प्राकृतिक प्रवाह के रास्ते बन्द हो रहे हैं। बरसाती पानी ले जाने वाले असंख्य "गदेले" (पहाड़ी नाले) बन्द हो चुके हैं और जंगलों की कटाई के कारण भूस्खलन और पहाड़ों के दरकने की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। लेकिन सरकारें इन तबाहियों से कोई सबक़ लेने को तैयार नहीं हैं।

इंस्टीट्यूट ऑफ़ ट्रॉपिकल मीटियरोलॉजी ने पिछले 100 वर्षों में बारिश के डेटा के विश्लेषण के आधार पर बताया है कि मॉनसून के दौरान अक़्सर बहुत अधिक वर्षा के लिए 'ग्लोबल वॉर्मिंग' (पृथ्वी के तापमान में बढ़ोत्तरी) ज़िम्मेदार है। इसकी दोषी भी यह पूँजीवादी व्यवस्था है, लेकिन इस पर एक अलग लेख की दरकार है।

पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई एक ऐसा कारण है जो सूखा और बाढ़ दोनों में योगदान करती है। जल्द से जल्द मुनाफ़ा कमाने के पागलपन में पूँजीपति और ठेकेदार जंगलों को साफ़ करते जा रहे हैं और पहाड़ों को नंगा करते जा रहे हैं। पेड़ों के कटने से ही सिल्टिंग यानी गाद जमा होने की समस्या की शुरुआत होती है। होता यह है कि पहाड़ की ढलान पर लगे वृक्ष बारिश होने पर मिट्टी को भारी मात्रा में बहकर नदियों में जाने से रोकते हैं। लेकिन वृक्षों की लगातार हो रही कटाई के कारण यह प्रक्रिया कमज़ोर पड़ रही है और नदियों में गाद जमा होने की रफ़्तार बढ़ रही है। नतीजा यह होता है कि एक ओर पेड़ों की लगातार कटाई के कारण पूरा का पूरा पारिस्थितिक सन्तुलन गड़बड़ाता है और दूसरी ओर नदियों के तल में गाद जमा होने के कारण वे उथली हो जाती हैं, उनका जल-स्तर जल्दी बढ़ जाता है और बारिश के मौसम में बाढ़ की समस्या आती है।

वैसे तो सभी सरकारें पर्यावरण को तबाह करने के लिए देशी-विदेशी पूँजीपतियों को खुली छूट देती रही हैं, लेकिन नरेन्द्र मोदी सरकार ने तो सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिये हैं। अपने पूँजीपति मालिकों को ख़ुश करने के लिए इसने पर्यावरण के विरुद्ध एक युद्ध ही छेड़ दिया है। सत्ता में आते ही इसने वन अधिकार क़ानून को कमज़ोर बनाकर लुटेरी कम्पनियों के लिए जंगलों को काट डालना और आदिवासियों की ज़मीनों पर क़ब्ज़ा करना आसान बना दिया। राष्ट्रीय वन्यजीव परिषद की स्वायत्तता ख़त्म करके उसे एक बेजान संस्था बना दिया गया, ताकि जंगलों में कम्पनियों की घुसपैठ को बेरोकटोक किया जा सके।

उत्तर व पूर्वी भारत के अधिकांश क्षेत्रों में बाढ़ आने का एक कारण नेपाल से आने वाली नदियाँ हैं जो नेपाल के पहाड़ों से काफ़ी गाद बहाकर भारत की नदियों में लाती हैं। इसके लिए 1954 में गठित गंगा आयोग ने ही कुछ बहुउद्देश्यीय योजनाओं का सुझाव दिया था जिससे कि इन नकारात्मक कारकों को सकारात्मक कारकों में बदलकर इनका लाभ उठाया जा सकता था।। ऐसी ही एक योजना थी 'जलकुण्डी योजना'। इस योजना के तहत नेपाल की नदियों से आने वाली सिल्ट को रोकने के लिए पानी की भारी मात्रा को नेपाल में रोककर बाँधों पर जल विद्युत परियोजनाएँ लगाने का इरादा था। इन परियोजनाओं का आधा लाभ नेपाल और आधा लाभ भारत को मिलने की योजना थी। तब इस योजना पर 33 करोड़ रुपये का ख़र्च होना था। लेकिन सरकार की उदासीनता की वजह से यह योजना धरी की धरी रह गयी। आज इस योजना को लागू करने पर उसमें 500 करोड़ रुपये से भी अधिक की लागत आयेगी, लेकिन फिर भी यह रक़म बाढ़ राहत के नाम पर बहायी जाने वाली रक़म से कहीं कम है। 1976 में गठित राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने नदियों के तल से गाद हटाने का सुझाव दिया था और साथ ही जलकुण्डी योजना को लागू करने का भी सुझाव दिया था। इसमें से कुछ भी नहीं किया गया। आगे भी इस तरह के आयोग बनते रहेंगे। लेकिन कुछ नहीं होगा। क्योंकि यह पूरी व्यवस्था मानवीय आवश्यकताओं की कोई क़द्र नहीं करती। ऐसी आपदाओं को रोकना तो दूर ऐसी आपदाओं के बाद इंसानों की लाशों पर अपने मुनाफ़े की रोटियाँ सेंकना इस व्यवस्था का काम है।

बाढ़ से बचने के तमाम रास्ते आज विज्ञान ने खोज निकाले हैं। निश्चित रूप से इसके लिए दीर्घकालिक योजनाएँ बनानी होंगी, जिसका तात्कालिक तौर पर मुनाफ़े के रूप में कोई फ़ायदा नहीं होगा। पूँजीवादी तन्त्र तात्कालिक मुनाफ़े में इस क़दर डूबा होता है कि ऐसी किसी भी योजना में वह पूँजी निवेश नहीं करना चाहता, जिसका फ़ायदा ठोस रूप में न मिले या देर से मिले। उसे तुरत-फुरत मुनाफ़ा चाहिए। ऐसा करना दरअसल पूँजीपतियों की मजबूरी भी है। कारण यह है कि कोई पूँजीपति अगर जनता की ज़रूरतों का लिहाज़ करते हुए ऐसी किसी दूरगामी और दीर्घकालिक योजना में पैसा लगाता है जिसका 'रिटर्न' उसे तत्काल नहीं मिलना है, तो बाज़ार में उसकी प्रतिस्पर्धा में खड़ा पूँजीपति उसे निगल जायेगा। ऐसे में निजी मालिकाने पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में कोई काम योजनाबद्ध और व्यवस्थित ढंग से नहीं हो पाता और पूँजीवादी गलाकाटू प्रतिस्पर्धा की अराजकता में जनता का भारी हिस्सा लुटता, पिसता और तबाह होता रहता है। आज अगर बाढ़ को रोकने के लिए सिल्ट हटाने, वृक्षारोपण के लिए योजनाबद्ध प्रयास करने और बड़े बाँधों के बजाय छोटे-छोटे बाँध बनाने के काम को योजनाबद्ध ढंग से शुरू किया जाये तो करोड़ों की संख्या में रोज़गार भी पैदा हो सकता है। नदियों के तल से निकाली गयी गाद बेहद उपजाऊ होती है। इस गाद से बेहद उन्नत गुणवत्ता वाली ईंटें भी बनायी जा सकती हैं। शहरी जल निकासी की पूरी व्यवस्था को ठीक करने की भी आवश्यकता है। यह काम भी लाखों रोज़गार पैदा कर सकता है। जब ये काम इतने ज़रूरी हैं, इसके लिए काम करने को तैयार लोग मौजूद हैं और इसके लिए ज़रूरी तमाम संसाधन भी हैं, तो क्या वजह है कि सरकारें इन कामों

(पेज 14 पर जारी)

बेरोज़गारी की भयावह होती स्थिति

(पेज 7 से आगे)

नहीं हैं, बल्कि लाखों की संख्या में ख़ाली पदों को भरने में भी नाकामयाब साबित हो रही हैं।

बेरोज़गारी को लेकर समाज में प्रचलित तर्क – टेक्नोलॉजी, स्वरोज़गार, योग्यता, आरक्षण

आमतौर पर आईटी सेक्टर में बढ़ती बेरोज़गारी के लिए ऑटोमेशन और बढ़ती टेक्नोलॉजी को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। इस तर्क के अनुसार विज्ञान की प्रगति लाखों लोगों के लिए ख़तरनाक होती जा रही है। इसके पीछे बहुत आसानी से लूट और मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी निज़ाम को बचा लिया जाता है। टेक्नोलॉजी का विकास, जिसे व्यवस्था राक्षस बता रही है, अगर उसे सही ढंग से इस्तेमाल किया जाये तो मनुष्य के लिए वरदान साबित हो सकती है। सभी लोगों के लिए काम के घण्टों में कमी आ सकती है। लेकिन मुनाफ़ा केन्द्रित समाज में यह सम्भव नहीं है।

नौकरी क्यों माँग रहे हो! ख़ुद नौकरी पैदा करो यानी स्वरोज़गार का तर्क आजकल ख़ूब प्रचलन में है। आसानी से समझा जा सकता है कि आज के समय में स्वरोज़गार का तर्क बिल्कुल आधारहीन और अवैज्ञानिक है, क्योंकि एक पूँजीवादी समाज में बड़ी पूँजी छोटी पूँजी को निगल जाती है, जिसका बहुत साफ़-साफ़ उदाहरण जिओ का है। जिओ के आने से पहले भारत में 11 टेलिकॉम कम्पनियाँ काम करती थीं, लेकिन जिओ द्वारा लगायी गयी बड़ी पूँजी के सामने छोटी-मोटी पूँजी अपने-आपको सँभाल नहीं सकी और वोडाफ़ोन जैसी बड़ी कम्पनी आइडिया के हाथों बिक गयी और इस समय भारत में सिर्फ़ तीन टेलिकॉम कम्पनियाँ काम कर रही हैं। फ़्लिपकार्ट के द्वारा मिन्त्रा, जबोंग का अधिग्रहण और ख़ुद फ़्लिपकार्ट का वालमार्ट के हाथों बिक जाना जैसे तमाम उदाहरण समाज में पड़े हैं। स्वरोज़गार करने वाले 1000 लोगो में से कोई 1 या 2 लोग ही सफल हो पाते हैं जिनको आधार बनाकर बाक़ी के 999 को कामचोर क़रार दिया जा रहा है।

योग्यता का तर्क देकर आज के समय में युवाओं को ही अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। लेकिन जिस योग्यता का तर्क दिया जाता है वह भर्ती के लिए निकाली गयी नौकरियों से तय होती। अगर सौ सीट के लिए नौकरी निकली, तो सौ लोग योग्य हो जाते हैं और अगर सीट ही नहीं निकली तो कोई योग्य नहीं होता है। और उनको तो बिल्कुल ही अयोग्य क़रार दिया जाता है, जो पढ़ाई के अलावा संगीत, कला, कविता, कहानियों और खेलों में रुचि रखते हैं।

आये दिन आरक्षण का मुद्दा उछाल कर

काम करने योग्य आबादी में मासिक वृद्धि (2005 से 2015 तक)	कुल आबादी का रोज़गार प्रतिशत	हर वर्ष रोज़गार की आवश्यकता ताकि रोज़गार की दर 52% से कम न हो
13,19,000	52	82,30,560

नौजवानों की एकजुटता में सेंध लगाये जाने का काम ख़ूब किया जा रहा है, क्योंकि अगर लोग आपस में ही बँटे रहेंगे तो शिक्षा-रोज़गार का मुद्दा पीछे छूट जायेगा। जिससे सताधारियों को दो फ़ायदे होंगे। पहला तो यह कि जाति और धर्म के आधार पर चुनावी लामबन्दी आसान हो जायेगी और दूसरा यह कि बुनियादी अधिकारों के लिए सरकार को लोगों का विरोध भी नहीं झेलना पड़ेगा। इसका एक बहुत ताज़ा उदाहरण हम लोगों के सामने है कि कुछ दिन पहले एसएससी में हुई धाँधली के ख़िलाफ़ छात्र-युवा सड़कों पर आये तभी एससी/एसटी बिल में संशोधन कर दिया गया, जिसका फ़ायदा सीधे सरकार को मिला और छात्रों का आन्दोलन जाति के नाम पर बिखर गया और जिस असीम खुराना को हटाने को लेकर यह आन्दोलन आगे चल रहा था, उसी का कार्यकाल भाजपा सरकार ने एक साल और बढ़ा दिया।

क्यों पैदा होती है बेरोज़गारी

पूँजीवाद वर्ग विभाजित निजी मालिकाने पर टिकी हुई एक व्यवस्था है, जिसके केन्द्र में इन्सान नहीं मुनाफ़ा होता है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली स्वभाव से अराजक होती है, जिसमें उत्पादन लोगों की आवश्यकता के हिसाब से नहीं बल्कि मुनाफ़ा कमाने के लिए होता है, पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में समाज की आवश्यकताओं का कोई ठोस आकलन नहीं होता है, उत्पादन पूरा पूँजीपति वर्ग एक साथ मिलकर नहीं करता है, बल्कि अलग-अलग पूँजीपति पिछले कुछ सालों के पुराने आँकड़ों के आधार पर निर्धारित करते हैं। बाज़ार की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए पूँजीपति अपने उत्पादन में लगने वाली कुल लागत को कम से कम रखने का प्रयास करता है।

उत्पादन के दौरान लगने वाली कुल पूँजी के दो हिस्से होते हैं

1. स्थिर पूँजी : जिसके अन्तर्गत कच्चा माल, मशीन, ज़मीन, बिजली, पानी, बिल्डिंग आदि चीज़ों पर लगने वाली पूँजी का हिस्सा आता है, जो वास्तव में उत्पादन के दौरान कोई नया मूल्य नहीं पैदा करता है, क्योंकि यह नये उत्पादित माल में बिना बढ़े हुए सीधे-सीधे रूपान्तरित हो जाता है।

2. परिवर्तनशील पूँजी : एक पूँजीवादी समाज में इन्सान के सबसे मौलिक गुण श्रम को भी बाज़ार के माल में तब्दील कर दिया जाता है और इसकी भी क़ीमत बाज़ार में श्रमशक्ति की माँग और आपूर्ति से तय होती है। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान श्रम ही वह कारक है जो अनुपयोगी कच्चे माल को मशीनों की सहायता से एक उपयोगी वस्तु में बदल देता है। श्रम से ही वस्तुओं में उपयोग मूल्य पैदा होता है। पूँजीपतियों के द्वारा श्रमशक्ति को ख़रीदने में लगायी गयी पूँजी के हिस्से को परिवर्तनशील पूँजी कहते हैं, क्योंकि उत्पादन से पहले की तुलना में इसका दाम बढ़कर उत्पादित माल में स्थानातरित हो जाता है। यही बढ़ा हुआ मूल्य बेशी मूल्य कहलाता है जिसको पूँजीपति हड़प लेता है।

बेशी मूल्य ही वह कारक है जिससे पूँजीवादी समाज में मुनाफ़ा पैदा होता है, इसलिए पूँजीपति कुल लागत को कम रखने के लिए बेशी मूल्य को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाने की कोशिश करता है जिसको दो तरीक़ों से अंजाम दिया जा सकता है - पहला काम के घण्टे को बढ़ाकर, दूसरा काम की गति को बढ़ाकर। काम की गति को बढ़ाने के लिए पूँजीपति उन्नत मशीनों को लगाता है जिसकी वजह से अब कम मज़दूर ही उन्नत मशीनों की सहायता से उत्पादन को पहले के स्तर से बढ़ा सकते हैं। परिणामस्वरूप पूँजीपति मज़दूरों के एक हिस्से को काम से निकालकर बाहर कर देता है और इस प्रक्रिया में बेरोज़गारों की एक फ़ौज काम न होने की वजह से सड़को पर आ जाती है।

उत्पादन जितने बड़े पैमाने पर होता जाता है, लागत उसी अनुपात में कम होती जाती है, इसलिए पूँजीपति वर्ग हरदम इस जुगत में रहता है कि उत्पादन बड़े से बड़े पैमाने पर हो ताकि ज़्यादा से ज़्यादा बेशी मूल्य पैदा किया जा सके। मुनाफ़े की हवस में पूँजीपति इतना पैदा कर देता है जो बाज़ार में बिक नहीं पता है और अति-उत्पादन की वजह से माल से बाज़ार पट जाता है। उसके माल के ख़रीदार नहीं मिलते, क्योंकि कारख़ाने का मज़दूर ही बाज़ार में ख़रीदार होता है और पूँजीपति मज़दूरों को लगातार लूट कर अपना मुनाफ़ा बढ़ाता है और उसको मज़दूरी के नाम पर बस इतना मिलता है कि वह किसी तरह से अपना और अपने परिवार का पेट पाल सके। जिसका परिणाम यह होता है कि एक तरफ़ बाज़ार माल से पटा रहता है और दूसरी ओर लाखों-करोड़ों लोग ज़िल्लत की ज़िंदगी जीने को मजबूर होते जाते हैं। यह परिघटना किसी एक पूँजीपति के साथ नहीं बल्कि पूरे पूँजीपति वर्ग के साथ घटित होती है और पूरा सेक्टर ही मन्दी की शिकार हो जाता है। यही घटना अन्य सेक्टरों के साथ भी होती है और पूरी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मन्दी आ जाती है।

मन्दी के कारण माल बाज़ार में पड़ा रहता है और पूँजीपतियों को उनका मुनाफ़ा वापस नहीं मिलता है जिसकी वजह से पूँजीपति उत्पादन में कटौती करता है और कभी-कभी तो उत्पादन की प्रक्रिया को ही रोक देता है। जिससे उत्पादन में निवेश घटता है, कारख़ाने बन्द होते हैं, छँटनी शुरू हो जाती है, और बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ती है। सेण्टर फ़ॉर मोनेटरिंग इण्डियन इकोनॉमी की 2018 की रिपोर्ट बताती है कि भारत में 2017 से 2018 के बीच 57 लाख लोग अपनी नौकरियों से हाथ धो चुके हैं।

पूँजीवाद अपनी स्वाभाविक गति से लगातार बेरोज़गारी पैदा करता रहा है। बेरोज़गार-रहित पूँजीवाद की कल्पना करना भी अपने-आप को धोखा देना ही साबित होगा, क्योंकि बेरोज़गारी पूँजीवादी समाज की ज़रूरत है। बेरोज़गारी सामाजिक असुरक्षा का एक ख़ौफ़ पैदा करती है जो मज़दूरों को कम मज़दूरी पर भी काम करने को मजबूर करता है। बेरोज़गारों की फ़ौज पूँजीपति वर्ग की औद्योगिक रिज़र्व सेना का काम करता है जिसका इस्तेमाल हड़ताल तोड़ने और सस्ते मज़दूरों की सप्लाई का स्रोत के रूप में होता है।

आगे की लड़ाई की दिशा क्या होनी चाहिए

बेरोज़गारी से लड़ने के नाम पर स्किल इण्डिया, स्टार्टअप इण्डिया, वोकेशनल ट्रेनिंग जैसी तमाम योजनाओं के विज्ञापन पर सरकार ने जमकर पैसा लुटाया, और बेरोज़गारी की असली वजह को लोगों के सामने नहीं जाने दिया। बेरोज़गारी महज़ एक मानवीय समस्या नहीं है, जिसका सामना बेरोज़गारों को करना पड़ता है। यह मौजूदा व्यवस्था के उत्पादन बढ़ाने की अक्षमता को व्यक्त करता है।

चूँकि लूट मुनाफ़े पर टिकी हुई पूँजीवादी निज़ाम के लिए बेरोज़गारों का होना पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए सेहतमन्द होता है। ऐसे में इस व्यवस्था की परिधि में रहकर बेरोज़गारी से निजात पाने के बारे में सोचना अन्ततोगत्वा दिवास्वप्न साबित होगा। ऐसे में 'सबको शिक्षा, सबको काम' नारे के इर्द-गिर्द एक बड़ी लामबन्दी क़ायम करते हुए आन्दोलन छेड़ने की ज़रूरत है और इस संघर्ष को पूरी पूँजीवादी व्यवस्था के चलने वाले व्यापक संघर्ष से जोड़े बग़ैर इसका कोई हल नहीं निकल सकता है। असल मायने में इस समस्या का समाधान न्याय और समता पर आधारित समाजवादी समाज में ही सम्भव है।

प्रधान चौकीदार की देखरेख में रिलायंस ने की हज़ारों करोड़ की गैस चोरी

(पेज 16 से आगे)

देशों के ख़िलाफ़ मामला उस देश की न्यायपालिका के बजाय एक मध्यस्थता पंचाट में ले जा सकें, जिनके द्वारा दिये गये फ़ैसले दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होंगे। धीरे-धीरे इन सन्धियों के माध्यम से यह व्यवस्था पूरी दुनिया में व्यापक तौर पर स्थापित हो गयी।

इन मध्यस्थता पंचाटों की कल्पना एक वैश्विक, निजी, सुपर अदालत के रूप में की जा सकती है। इसमें जज और वकील विभिन्न देशों ख़ासतौर पर विकसित पूँजीवादी देशों के अभिजात कॉर्पोरेट वकील होते हैं। एक ही व्यक्ति किसी मामले में जज होता है तो दूसरे मामले में वकील! इससे उनके आपसी सम्बन्ध भी अच्छी तरह समझे जा सकते हैं। इन पंचाटों में तीन मध्यस्थ होते हैं जिनमें से एक कम्पनी व एक सरकार द्वारा चुना जाता है और एक दोनों की सहमति से। सिद्धान्त में यह व्यवस्था बड़ी उचित व न्यायपूर्ण प्रतीत होती है। पर ये पंचाट सम्बन्धित देश में नहीं बल्कि दुनिया के किसी और कोने में सुनवाई करते हैं, इनके ऊपर न्यायालयों में मामला सिद्ध करने के औपचारिक नियम लागू नहीं होते और सम्बन्धित देश के क़ानूनों से मुक्त ये पंचाट समझौतों की व्याख्या बड़ी मनमर्जी से कर सकते हैं। पर ये सब मध्यस्थ पंच ख़ुद ही कॉर्पोरेट वकील होते हैं, बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिए वकालत करते हैं, उन्हें ऐसे सब मामलों में सलाह-मशविरा देते हैं और इस सबसे भी बड़ी बात यह कि इनकी करोड़ों की कमाई इसी पर निर्भर करती है कि कम्पनियाँ इन पंचाटों को सामान्य न्याय व्यवस्था से अपने हित के लिए बेहतर मानें और अधिक से अधिक मामले इनमें ले जायें। ख़ुद अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश जॉन रॉबर्ट्स ने 2014 में एक फ़ैसले में चेतावनी देते हुए कहा कि इन पंचाटों की शक्ति बहुत भयावह है क्योंकि ये किसी भी देश के सार्वभौम क़ानूनों पर पुनर्विचार कर 'उस देश की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के आधिकारिक फ़ैसलों को रद्द कर सकते हैं।' इस तरह ये पंचाट किसी देश के सार्वभौम क़ानूनों को भी ताक पर रख दे सकते हैं।

अपनी इस बेहद ख़तरनाक शक्ति के कारण ये पहले विदेशों में निवेश करने वाली कम्पनियों के बीच बहुत लोकप्रिय हुए, क्योंकि उस देश में पर्यावरण के विनाश, श्रमिकों की जान से खिलवाड़, ख़राब गुणवत्ता वाले या ज़हरीले उत्पाद बेचने वाली, रिश्वतबाजी/भ्रष्टाचार से ठेके लेने वाली कम्पनियाँ इस ज़रिये जनमत और जन आन्दोलनों के दबाव में अपने अपराधों के लिए मिल सकने वाले हर किस्म के दण्ड से सुरक्षित हो गयीं। बाद में रिलायंस, देवास आदि घरेलू कम्पनियों ने भी इसी रास्ते को पकड़ा और स्वयं अपने देश में सरकारी योजनाओं में निवेश करने वाली या ठेके लेने वाली कम्पनियाँ भी समझौतों-संविदाओं में मामलों को देश के सामान्य क़ानूनों और सामान्य न्यायालयों में निपटाने के बजाय इन पंचाटों में निपटाने का प्रावधान डलवाने लगीं। इस तरह वे ख़ुद पूँजीवादी व्यवस्था के अपने क़ानूनों से भी काफ़ी हद तक मुक्त होकर शोषण और संसाधनों की लूट की खुली छूट पा गयीं।

मज़दूरों के क्रान्तिकारी अख़बार के बारे में लेनिन के विचार

हमारी राय में, हमारे कामों की शुरुआत, जिस संगठन को हम बनाना चाहते हैं उसके निर्माण की दिशा में हमारा पहला कदम, एक अखिल रूसी राजनीतिक अख़बार की स्थापना होना चाहिए। हम कह सकते हैं कि यही वह मुख्य सूत्र है जिसे पकड़ कर हम संगठन का लगातार विकास कर सकेंगे और उसे गहरा और विस्तृत बना सकेंगे। हमें सबसे ज्यादा ज़रूरत एक अख़बार की ही है; उसके बिना सिद्धान्तपूर्ण, व्यवस्थित और चौमुखी प्रचार और आन्दोलन के उस कार्य को हम नहीं कर सकते जो सामाजिक-जनवादी पार्टी (यानी कम्युनिस्ट पार्टी –सं.) का आमतौर से मुख्य और स्थायी काम है। और, इस समय, जबकि राजनीति तथा समाजवाद से सम्बन्धित सवालों के विषय में जनता के व्यापकतम हिस्सों में दिलचस्पी पैदा हो गयी है, यह काम और भी ज़रूरी बन गया है। व्यक्तिगत कार्रवाइयों, स्थानीय पर्चों, पत्रिकाओं आदि के रूप में चलने वाले छिटपुट आन्दोलन को एक आम व्यवस्थित आन्दोलन के ज़रिए बल पहुँचाने की आवश्यकता कभी इतनी तीव्रता से नहीं महसूस की गयी थी जितनी आज की जा रही है। और इस काम को केवल एक नियमित रूप से निकलने वाले अख़बार की मदद से ही किया जा सकता है। बिना किसी अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि इस तथ्य से कि अख़बार कितनी जल्दी-जल्दी और कितनी नियमितता से निकलता (और वितरित किया जाता) है इस बात का ठीक-ठीक अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हमारी लड़ाकू कार्रवाइयों के इस मुख्य और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग को कितनी अच्छी तरह से पूरा किया जा रहा है। इसके अलावा, हमारे अख़बार को अखिल रूसी होना चाहिए। छपे शब्द के माध्यम से जनता और सरकार को प्रभावित करने के लिए अपने प्रयासों को यदि हम संयुक्त नहीं कर सकते तो – और जब तक ऐसा नहीं कर सकते तब तक– प्रभाव डालने के दूसरे, अधिक जटिल, अधिक कठिन, किन्तु, साथ ही अधिक निर्णायक तरीकों को जोड़कर और संगठित करके उनका इस्तेमाल करने का विचार मात्रा काल्पनिक होगा। नन्हें-नन्हें टुकड़ों में बँटे होने तथा सामाजिक-जनवादियों के अधिकांश लोगों के लगभग पूरे तौर से स्थानीय कामों में डूबे रहने के कारण, हमारे आन्दोलन को, सर्वप्रथम विचारधारात्मक रूप से और फिर व्यावहारिक-सांगठनिक रूप से भी नुकसान पहुँचता है। स्थानीय कामों में इस तरह डूबे रहने के कारण सामाजिक-जनवादियों का दृष्टिकोण, उनकी गतिविधियों का दायरा, तथा गुप्त रूप से काम करने तथा अपनी तैयारी को कायम रखने की उनकी कार्य-निपुणता संकुचित हो जाती है। जिस अस्थिरता तथा जिस ढुलमुलपन का ऊपर उल्लेख किया गया है उसकी गहरी जड़ें आन्दोलन के छितराव की इसी अवस्था में पायी जा सकती हैं। इस कमज़ोरी को दूर करने और विभिन्न स्थानीय आन्दोलनों को एक अविभाजित अखिल-रूसी आन्दोलन का रूप देने के लिए, आवश्यक पहला कदम एक अखिल रूसी अख़बार की स्थापना करना होना चाहिए। अन्त में, हमें निश्चित रूप से एक राजनीतिक अख़बार की आवश्यकता है। एक राजनीतिक मुखपत्र के बिना किसी राजनीतिक आन्दोलन की, ऐसे किसी आन्दोलन की जो इस नाम को धारण करने का अधिकारी हो, आज के यूरोप में कल्पना तक नहीं की जा सकती। इस तरह के अख़बार के बिना हम अपने काम को, राजनीतिक असन्तोष और विरोध के तमाम तत्वों को एक जगह एकत्रित करने और उसके द्वारा सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन में जीवन संचार करने के काम को, कदापि पूरा नहीं कर सकते।

पहला कदम हमने उठा लिया है, ''आर्थिक'', फ़ैक्टरी सम्बन्धी, भण्डाफोड़ करने के लिए मजदूर वर्ग के अन्दर हमने एक जोश पैदा कर दिया है; अब हमें अगला कदम उठाना चाहिए। जनसंख्या के उस प्रत्येक अंग के अन्दर, जिसमें किंचित भी राजनीतिक चेतना पैदा हो गयी है, हमें राजनीतिक भण्डाफोड़ करने के लिए जोश जागृत करने का कदम उठाना चाहिए। इस बात से हमें हतोत्साहित नहीं होना चाहिए कि राजनीतिक भण्डाफोड़ की आवाज़ आज इतनी कमज़ोर और सहमी हुई है, और इतनी कम उठती है। इसकी वजह यह नहीं है कि पुलिस की निरंकुशता के सामने लोगों ने पूरे तौर से हथियार डाल दिये हैं, बल्कि इसकी वजह यह है कि जो लोग भण्डाफोड़ करने की क्षमता रखते हैं और उसके लिए तैयार हैं उनके पास ऐसा कोई मंच नहीं है जहां से वे बोल सकें, उनके पास उत्सुक और उत्साह दिलाने वाले ऐसे श्रोता नहीं हैं जिनसे वे बोल सकें, जनता के बीच उन्हें वह शक्ति कहीं नहीं दिखलायी देती जिसकी अदालत में ''सर्वशक्तिशाली'' रूसी सरकार के ख़िलाफ़ अपनी शिकायत करने से उन्हें कोई लाभ होगा।

परन्तु आज यह सब तेजी से बदल रहा है। अब ऐसी शक्ति पैदा हो गयी है – यह शक्ति है क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग। उसने न केवल उनकी बात सुनने और राजनीतिक संघर्ष के आह्वानों का समर्थन करने की, बल्कि साहसपूर्वक स्वयं मोर्चा लेने की भी अपनी तत्परता प्रदर्शित कर दी है। ज़ारशाही रूस की सरकार के राष्ट्रव्यापी भण्डाफोड़ के लिए अब हम एक मंच प्रस्तुत कर सकते हैं, और हमारा कर्तव्य है कि इस काम को हम पूरा करें। ऐसा मंच एक सामाजिक-जनवादी अख़बार ही हो सकता है। रूस का मज़दूर वर्ग रूसी समाज के दूसरे वर्गों तथा अन्य स्तर के लोगों से भिन्न है: राजनीतिक ज्ञान प्राप्त करने में यह बराबर दिलचस्पी दिखलाता है और गैर-क़ानूनी साहित्य की लगातार (केवल तीव्र उथल-पुथल के कालों में ही नहीं) तथा भारी मात्रा में माँग करता है। ऐसे समय में जबकि जनता की इस तरह की माँग साफ़-साफ़ दिखलायी देती है, जबकि अनुभवी क्रान्तिकारी नेताओं की ट्रेनिंग (शिक्षा-दीक्षा) शुरू हो चुकी है, और जबकि बड़े शहरों के मज़दूर इलाकों और फ़ैक्टरी की बस्तियों और आबादियों में काफी मात्रा में संकेन्द्रित हो जाने की वजह से मज़दूर वर्ग उन क्षेत्रों का वस्तुतः मालिक बन गया है, तब सर्वहारा वर्ग के लिए राजनीतिक अख़बार निकालने का काम भी सर्वथा सम्भव बन गया है। सर्वहारा वर्ग के माध्यम से शहर के निम्न-पूँजीपति वर्ग, देहातों के दस्तकारों और किसानों तक अख़बार पहुँच जायेगा और, इस प्रकार, वह जनता का एक वास्तविक राजनीतिक समाचारपत्र बन जायेगा।

लेकिन अख़बार की भूमिका मात्र विचारों का प्रचार करने, राजनीतिक शिक्षा देने, तथा राजनीतिक सहयोगी भरती करने के काम तक ही नहीं सीमित होती। अख़बार केवल सामूहिक प्रचारक और सामूहिक आन्दोलनकर्ता का ही नहीं बल्कि एक सामूहिक संगठनकर्ता का भी काम करता है। इस दृष्टि से उसकी तुलना किसी बनती हुई इमारत के चारों ओर खड़े किये गये बल्लियों के ढाँचे से की जा सकती है। इस ढाँचे से इमारत की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है और इमारत बनाने वालों को एक दूसरे के पास आने-जाने में सहायता मिलती है जिससे वे काम का बँटवारा कर सकते हैं और अपने संगठित श्रम के संयुक्त परिणामों पर विचार-विनिमय कर सकते हैं। अख़बार की मदद और उसके माध्यम से, स्वाभाविक रूप से, एक स्थायी संगठन खड़ा हो जायेगा जो न केवल स्थानीय गतिविधियों में, बल्कि नियमित आम कार्यों में भी हिस्सा लेगा, और अपने सदस्यों को इस बात की ट्रेनिंग देगा कि राजनीतिक घटनाओं का वे सावधानी से निरीक्षण करते रहें, उनके महत्व और आबादी के विभिन्न अंगों पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करें, और ऐसे कारगर उपाय निकालें जिनके द्वारा क्रान्तिकारी पार्टी उन घटनाओं को प्रभावित करे। अख़बार के लिए नियमित रूप से सामग्री जमा करने तथा उसके नियमित वितरण की व्यवस्था कायम करने के मात्र तकनीकी काम के लिए भी आवश्यक होगा कि एकताबद्ध पार्टी के ऐसे स्थानीय एजेन्टों* का जाल बिछा दिया जाये जो एक-दूसरे के साथ निरन्तर सम्पर्क रखेंगे, आम हालात की जानकारी प्राप्त करेंगे, अखिल रूसी कार्य-योजना के अन्तर्गत अपने निर्धारित कार्यों को नियमित रूप से पूरा करने के आदी हो जायेंगे, और विभिन्न क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के संगठन-कार्य के द्वारा अपनी शक्ति की परीक्षा करेंगे।

* एजेन्टों: निस्संदेह, यह बात तो साफ़ है कि ये एजेन्ट हमारी पार्टी की स्थानीय समितियों (दलों, अध्ययन केन्द्रों) के साथ घनिष्ठतम सम्पर्क बनाये रखकर ही सफलतापूर्वक काम कर सकते हैं। आम तौर से, जो सम्पूर्ण योजना हमने पेश की है उसे केवल ऐसी कमेटियों के अत्यन्त सक्रिय समर्थन से ही अमली रूप दिया जा सकता है जिन्होंने पार्टी को एकताबद्ध करने की बारम्बार कोशिश की है और जो कि, हमें पूरा विश्वास है, उसे एकताबद्ध करने में – आज नहीं तो कल, एक तरह से नहीं तो किसी दूसरी तरह से – अवश्य सफल होंगी।

('कहाँ से शुरू करें' लेख से)

रूस के समस्त भागों की फ़ैक्टरियों और दफ़्तरों में काम करने वाले लोगों के पत्रों के उत्तर में मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये जाने वाले चन्दों की रिपोर्टें पढ़कर प्रावदा के पाठकों को – जिनमें से अधिकांश रूसी जीवन की कठिन बाह्य परिस्थितियों के कारण दूर-दूर और एक दूसरे से अलग बिखरे हुए हैं – इस बात का कुछ अनुमान हो सकता है कि विभिन्न व्यवसायों और स्थानों के सर्वहारा किस प्रकार लड़ रहे हैं और किस प्रकार उनके अन्दर मज़दूर वर्गीय जनतंत्र की रक्षा की चेतना पैदा हो रही है।

मज़दूरों के जीवन-वृतान्त का प्रकाशन 'प्रावदा' का एक स्थायी स्तम्भ बन ही रहा है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि आगे चलकर, फ़ैक्टरियों में होने वाली ज़्यादतियों, सर्वहारा वर्ग के नये-नये अंगों की जागृति, मजदूरों के हितों से सम्बन्धित कामों के लिए किये जाने वाले चन्दों आदि के बारे में लिखे गये पत्रों के अलावा, मज़दूरों के विचारों और उनकी भावनाओं के विषय में, चुनाव आन्दोलनों के विषय में, मज़दूरों के प्रतिनिधियों के चुनावों के विषय में, मज़दूर क्या पढ़ते हैं, किन प्रश्नों में उनकी विशेष दिलचस्पी है आदि के विषयों में भी रिपोर्टें मज़दूरों के समाचारपत्र के दफ़्तर में आने लगेंगी।

मज़दूरों का समाचारपत्र मज़दूरों का एक मंच है। इस मंच से, पूरे रूस के सामने, एक के बाद एक उन तमाम प्रश्नों को मज़दूरों को उठाना चाहिए जिनका आम तौर से मज़दूरों की ज़िन्दगी से तथा खास तौर से मज़दूर वर्ग के जनतांत्रिक अधिकारों से सम्बन्ध है।

('मज़दूर और प्रावदा' लेख से)

भुखमरी का शिकार देश : ये मौतें व्यवस्था के हाथों हुई हत्याएँ हैं!

– वृशाली

पिछले दिनों देश की राजधानी दिल्ली के मण्डावली में 8, 4 व 3 साल की तीन बच्चियों की मौत सुर्ख़ियों में छायी रही। इस मौक़े का 'फ़ायदा' उठाकर चुनावी रोटियाँ सेंकने में किसी भी चुनावबाज़ पार्टी ने कोई कसर नहीं छोड़ी। एक ओर दिल्ली सरकार, ख़ास तौर पर इलाक़े के विधायक - मनीष सिसोदिया पर भाजपा ने जमकर कीचड़ उछाला और दूसरी ओर दिल्ली सरकार ने इसकी ज़िम्मेदारी केन्द्र सरकार के मत्थे यह कहकर मढ़ दी कि राशन कार्ड बनाने की नयी नीतियों को केन्द्र सरकार लागू नहीं करने दे रही। अपना दामन बचाने के लिए दिल्ली सरकार ने तमाम तरह की नीच कोशिशें करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ी। लेकिन दिल्ली के मण्डावली क्षेत्र में मौत का शिकार हुई मज़दूर परिवार की ये तीन बच्चियाँ न तो पहली हैं और न आख़िरी। पिछले साल सितम्बर माह में झारखण्ड में 'भात' की रट लगाते हुए मौत का शिकार हुई 11 वर्ष की 'सन्तोषी' या कुछ दिनों पहले 58 साल की महिला ने तो मीडिया का थोड़ा-बहुत ध्यान तो आकर्षित कर लिया, लेकिन 'ग्लोबल हंगर इण्डेक्स' की सूची में 119 देशों में 100वें पायदान पर खड़े भारत के विकास की सच्चाई यह है कि यहाँ 19.4 करोड़ आबादी रोज़ाना भूखे पेट सोने को मजबूर हैं। ज़ाहिर-सी बात है कि मौत का तात्कालिक कारण कभी 'भुखमरी' नहीं होती, बल्कि इसका वाहक डायरिया जैसी कोई बीमारी ही होता है, लेकिन बीमारी से न उबर पाने में 'कुपोषण' ही ज़िम्मेदार होता है। वैसे अगर दुनिया-भर की बात करें तो भुखमरी 2000 के मुकाबले 27 फ़ीसदी कम हुई है, परन्तु भारत के लिए यह आँकड़ा सिर्फ़ 18 फ़ीसदी है। 1992 में भारत से पीछे चल रहे बांग्लादेश और बर्मा भी आज भारत को पछाड़ने में सफल हो चुके हैं! संयुक्त राष्ट्र के खाद्य व कृषि संगठन की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार भारत की 19.07 करोड़ आबादी, अर्थात 14.5 फ़ीसदी आबादी कुपोषण का शिकार है। भारत में 5 वर्ष से कम की आयु के बच्चे सबसे ज़्यादा मौत का शिकार होते हैं जिनकी मृत्यु दर 4.8 फ़ीसदी है। 5 वर्ष के कम की आयु के बच्चों की मौत के 50 फ़ीसदी मामलों का प्रत्यक्ष कारण कुपोषण है। आँकडों से दिखाया जाये तो रोज़ मरने वाले बच्चों की संख्या 4,500 प्रतिदिन अर्थात 15 लाख प्रतिवर्ष है! देश के एक चौथाई बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। 5 वर्ष से कम की आयु के 38.4 प्रतिशत बच्चे बौने हैं और 21 प्रतिशत बच्चे 'वेस्टिंग डिज़ीज़' (क़द के हिसाब से कम वज़न) का शिकार हैं। 15 से 49 वर्ष की महिलाओं में 51.4 फ़ीसदी महिलाएँ 'अनेमिक' यानी ख़ून की कमी की शिकार हैं। ये आँकड़े सिर्फ़ किसी एक देश की चौहद्दी तक सीमित नहीं हैं - दुनिया-भर में लगभग 79.30 करोड़ लोग यानी 11 फ़ीसदी आबादी कुपोषण का शिकार है। लेकिन कुपोषण के लिए आख़िर ज़िम्मेदार कौन है? शायद जो पहला जवाब दिमाग़ में कौंधता है वह है देश की बढ़ती आबादी और खाद्यान संकट।

आइए अब इसकी पड़ताल की जाये कि इस नक़ाब के पीछे है कौन? आँकड़े यह साफ़ बताते हैं कि दुनिया-भर में हो रहे खाद्यान उत्पाद से दुनिया-भर की मौजूदा आबादी की दोगुनी संख्या को पर्याप्त पोषाहार दिया जा सकता है! वहीं 'इकनोमिक टाइम्स' की रिपोर्ट के अनुसार भारत में आबादी के हिसाब से खाद्यान ज़रूरत लगभग 25.5-23.0 करोड़ टन है और उत्पादन लगभग 27.0 करोड़ टन है। वह भी तब जब 88.8 फ़ीसदी जोत का आकार 2 एकड़ से भी कम है, मतलब उत्पादकता को पूर्ण रूप से बढ़ाया भी नहीं जा सका है। फिर भी पिछले दो दशकों में खाद्यान्न उत्पादन दोगुना हो चुका है। भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय के अनुसार इस

(पेज 14 पर जारी)।

मदरसा आधुनिकीकरण के ढोल की पोल - 50 हज़ार मदरसा शिक्षक 2 साल से तनख़्वाह से महरूम

- आनन्द सिंह

नरेन्द्र मोदी ख़ुद को मुसलमानों का हितैषी साबित करने के लिए भाँति-भाँति के जतन करते नज़र आते हैं। कभी वे ट्रिपल तलाक़ के विरोध में बोलते हैं तो कभी वे और उनकी पार्टी मदरसों में आधुनिक व वैज्ञानिक शिक्षा की वकालत करते दिखायी पड़ते हैं। हाल ही में उत्तर प्रदेश में योगी सरकार ने भी मदरसा आधुनिकीकरण के नाम पर मदरसों में बच्चों को कुर्ता-पैजामा न पहनने के निर्देश जारी किये हैं। लेकिन इन खोखले दावों के पीछे छिपी सच्चाई देखते ही उनकी मंशा पर सवाल उठने लगते हैं। मिसाल के लिए मदरसों के आधुनिकीकरण के सवाल को ही ले लेते हैं। वैसे तो पिछले कुछ दशकों के दौरान मदरसों के आधुनिकीकरण की बातें सभी सरकारें करती आयी हैं, लेकिन मोदी सरकार के प्रवक्ता इस पर अतिशय ज़ोर देते दिखायी पड़ते हैं। हिन्दुत्ववादियों के मुँह से मुसलमानों की तरक़्क़ी और बेहतरी की बातें सुनना विडम्बनापूर्ण लग सकता है, परन्तु इस ज़ुबानी जमा ख़र्च की बजाय मदरसा आधुनिकीकरण स्कीम की वास्तविकता जानने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इस स्कीम पर ज़ोर देने की वजह हिन्दुत्ववादियों का हृदय परिवर्तन नहीं बल्कि समाज में मुस्लिम-विरोधी सोच और नफ़रत फैलाने की घिनौनी साज़िश है।

अगर मोदी सरकार वाक़ई मदरसों में आधुनिक व वैज्ञानिक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध होती तो वह मदरसों में हिन्दी, अंग्रेज़ी, गणित, कम्प्यूटर और विज्ञान जैसे विषयों को पढ़ाने के लिए नये शिक्षकों की भर्ती करती। परन्तु नये शिक्षकों को भर्ती करना तो दूर उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, झारखण्ड सहित 16 राज्यों में मदरसों में आधुनिक व वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त किए गये करीब 50 हज़ार शिक्षकों को पिछले 2 सालों से केन्द्र सरकार ने कोई वेतन या मानदेय ही नहीं दिया है।

ग़ौरतलब है कि मदरसों में पढ़ाने वाले ये शिक्षक केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मन्त्रालय की 'स्कीम फ़ॉर प्रोवाइडिंग क्वालिटी एजुकेशन इन मदरसा (एसपीक्यूईएम)' के तहत पंजीकृत हैं। वर्ष 2008-09 से शुरू इस स्कीम में शिक्षकों को मदरसों में आधुनिक शिक्षा प्रदान करने के लिए भर्ती किया गया था। इस स्कीम के तहत ग्रेजुएट शिक्षकों को 6 हज़ार रुपये और पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षकों को 12000 रुपये केन्द्र सरकार की ओर से देने की योजना थी जो उनके वेतन का 75 से 80 फ़ीसदी हिस्सा है। शेष राशि राज्य सरकारों को वहन करना था। लेकिन दो साल से केन्द्र सरकार की ओर से कोई वेतन न मिलने की सूरत में ये शिक्षक नौकरी छोड़कर कोई दूसरा काम करने पर मजबूर हो रहे हैं। यही नहीं केन्द्र की राजग सरकार ने आते ही मदरसा आधुनिकीकरण योजना के तहत आबण्टित राशि को 340 करोड़ से घटाकर 120 करोड़ कर दिया। हाल ही में सरकार ने इस योजना को सर्वशिक्षा अभियान से जोड़ते हुए इसका नाम 'एसपीईएमएम' रखा है जिसे वर्ष 2018-19 से लागू करने की योजना है। परन्तु मदरसा शिक्षक अभी भी सशंकित हैं क्योंकि इस नयी स्कीम में पिछले तीन साल के बकाया मानदेय का कोई ज़िक्र नहीं है। केन्द्र के अतिरिक्त भाजपा शासित राज्यों में भी मदरसों व मुस्लिम कल्याण के लिए दी जाने वाली धनराशि में कटौती का ऐलान किया है।

उपरोक्त तथ्यों की रोशनी में यह समझना मुश्किल नहीं है कि मोदी सरकार के प्रवक्ताओं द्वारा मदरसों के आधुनिकीकरण पर ज़ोर देना ज़ुबानी जमा ख़र्च से अधिक कुछ नहीं है। सच तो यह है कि सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार केवल 4 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे ही मदरसों में शिक्षा ग्रहण करते हैं। मदरसों में जो बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनमें से ज़्यादातर ग़रीबों के ही बच्चे होते हैं, क्योंकि अधिकांश मुस्लिम मोहल्लों में सरकारी स्कूल बहुत कम होते हैं और निजी स्कूल बहुत महँगे होते हैं। ऐसे में यदि कोई सरकार शिक्षा को धर्म की जकड़बन्दी से मुक्त करके वैज्ञानिक पद्धति से शिक्षा प्रदान करने के प्रति प्रतिबद्ध है तो उसे सबसे पहले ऐसे मुस्लिम बाहुल्य मोहल्लों में सरकारी स्कूल खोलने चाहिए, जहाँ स्कूलों की संख्या बेहद कम है। लेकिन नये स्कूल खोलना तो दूर, सरकार मदरसों में वैज्ञानिक व आधुनिक शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त शिक्षकों को ही वेतन या मानदेय नहीं दे रही है।

संघ परिवार पिछले कई दशकों से लगातार यह दुष्प्रचार करता आया है कि मदरसों में इस्लाम की शिक्षा-दीक्षा देने की वजह से मुस्लिम समाज से आतंकवादी पैदा हो रहे हैं। आतंकवाद की जटिल समस्या को उसकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से काटकर महज़ एक धर्म-विशेष और उसकी शिक्षा पद्धति पर अपचयित कर देने के पीछे संघ परिवार की ज़हरीली फासीवादी विचारधारा काम करती है। सरस्वती शिशु मन्दिरों सहित संघ द्वारा संचालित तमाम संस्थाओं में हिन्दू धर्म की तमाम दकियानूसी एवं अवैज्ञानिक प्रथाओं और रीति-रिवाज़ों को बेशर्मी से बढ़ावा देने वाले और उनका बचाव करने वाले संघी कूपमण्डूक मुस्लिम समाज की प्रथाओं की बात करते समय एकाएक ख़ुद को प्रगतिशील दिखाने का बेशर्मी भरा पाखण्ड करते हैं। लेकिन जैसाकि ऊपर दिखाया गया है, सच्चाई उनके इस पाखण्ड को तार-तार कर देती है।

शहीद उधम सिंह के 78वें शहादत दिवस (31 जुलाई 1940) के अवसर पर!

शहीद उधम सिंह उर्फ़ राम मोहम्मद सिंह आज़ाद अमर रहें !

– शाम मूर्ति

31 जुलाई को शहीद उधम सिंह का 78वाँ शहादत दिवस है। भारत के आज़ादी आन्दोलन के उधम सिंह अमर सेनानी रहे हैं। अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड को भला कौन भूल सकता है! यह घटना ब्रिटिश हुकूमत के काले अध्यायों में से एक है। 13 अप्रैल सन् 1919 को वैशाखी वाले दिन निहत्थी जनता पर अंग्रेज़ों ने गोलियाँ चलवा दी थीं। अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ में 'रॉलेट ऐक्ट 1919' (अराजक और क्रान्तिकारी अपराध अधिनियम, 1919) के विरोध में शान्तिपूर्वक तरीक़े से विरोध कर रहे महिलाओं-बच्चों-बूढ़ों समेत सैकड़ों भारतीयों पर अंग्रेज़ी हुकूमत के नुमाइन्दों ने अन्धाधुँध गोलीबारी कर उनकी निर्मम हत्या कर दी थी। 'रॉलेट ऐक्ट' को भारत में उभर रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के उद्देश्य से निर्मित किया गया था। इस क़ानून के अनुसार ब्रिटिश सरकार किसी भी भारतीय पर अदालत में बिना मुक़दमा चलाये और सुनवाई किये उसे जेल में डाल सकती थी। इस क़ानून के तहत अपराधी को उसके ख़िलाफ़ मुक़दमा दर्ज करने वाले का नाम जानने का अधिकार भी समाप्त कर दिया गया था। इस क़ानून के विरोध में देशव्यापी हड़तालें, जुलूस और प्रदर्शन हो रहे थे। उन्ही में से एक था जलियाँवाला बाग़। इस गोलीकाण्ड में हज़ारों लोग घायल और शहीद हुए थे। गोली चलाने का हुक्म 'जनरल एडवर्ड हैरी डायर' नामक अंग्रेज़ अफ़सर ने दिया था। किन्तु इसके पीछे पंजाब के तत्कालीन गवर्नर जनरल रहे 'माइकल ओ'ड्वायर' का हाथ था। ब्रिटिश सरकार इस हत्याकाण्ड के माध्यम से पंजाब और पूरे देश की जनता को आतंकित करना चाहती थी। पंजाब के तत्कालीन गवर्नर 'ओ'ड्वायर' ने 'जनरल डायर' की कार्रवाई का अन्त तक न सिर्फ़ समर्थन किया बल्कि उसका बचाव भी किया। उस समय बाग़ में उधम सिंह भी मौजूद थे। उन्होंने इस ख़ूनी दृश्य को अपनी आँखों से देखा था। गोरी हुकूमत द्वारा रचे गये इस क़त्लेआम से क्षुब्ध होकर उधम सिंह ने इसके ज़िम्मेदार पंजाब के तत्कालीन गवर्नर को मौत के घाट उतारने का फ़ैसला लिया। गोलीकाण्ड के क़रीब 21 साल बाद, 13 मार्च 1940 को लन्दन के एक हॉल में उन्होंने 'माइकल ओ'ड्वायर' को गोलियों से निशाना बनाया और ख़त्म कर दिया। 'ओ'ड्वायर' की हत्या के बाद उधम सिंह भागे नहीं बल्कि उन्होंने अपनी गिरफ़्तारी दी। उधम सिंह शहीद भगतसिंह से प्रभावित थे और उन्हें अपना आदर्श मानते थे। मुक़दमे के दौरान उधम सिंह ने कहा, "मेरे जीवन का लक्ष्य क्रान्ति है। क्रान्ति जो हमारे देश को स्वतन्त्रता दिला सके। मैं अपने देशवासियों को इस न्यायालय के माध्यम से यह सन्देश देना चाहता हूँ कि देशवासियो! मैं तो शायद नहीं रहूँगा। लेकिन आप अपने देश के लिए अन्तिम साँस तक संघर्ष करना और अंग्रेज़ी शासन को समाप्त करना और ऐसी स्थिति पैदा करना कि भविष्य में कोई भी शक्ति हमारे देश को गुलाम न बना सके"। इसके बाद उन्होंने हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद! और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश हो! नारे बुलन्द किये।

Shaheed Udham Singh (1899 - 1940)

उधम सिंह हिन्दू, मुस्लिम और सिख जनता की एकता के कड़े हिमायती थे, इसीलिए उन्होंने अपना नाम बदलकर 'राम मोहम्मद सिंह आज़ाद' रख लिया था। वे इसी नाम से पत्र-व्यवहार किया करते थे और यही नाम उन्होंने अपने हाथ पर भी गुदवा लिया था। उन्होंने वसीयत की थी कि फाँसी के बाद उनकी अस्थियों को तीनों धर्मों के लोगों को सौंपा जाये। अंग्रेज़ों ने इस जाँबाज को 31 जुलाई 1940 को फाँसी पर लटका दिया। उधम सिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1899 को पंजाब प्रान्त के संगरूर ज़िले के सुनाम गाँव हुआ था। छोटी उम्र में ही माँ-बाप और बड़े भाई की मृत्यु की वजह से वह अनाथ हो गये। उनका लालन-पोषण अनाथालय में हुआ। इसके बावजूद भी जीवन के मुश्किल हालात उनके इरादों को डगमगा नही पाये। मैट्रिक की पढ़ाई कर उन्होंने अनाथालय छोड़ दिया और क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर जंग-ए-आज़ादी के मैदान में कूद पड़े। 1924 में विदेशों में भारत की आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाली क्रान्तिकारी गदर पार्टी में सक्रिय रहे और विदेशों में चन्दा जुटाने का काम किया। उधम सिंह ने हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचएसआरए), इण्डियन वर्कर्स एसोसिएशन आदि क्रान्तिकारी संगठनों के साथ अलग-अलग समय पर काम भी किया।

उनकी वीरता व जज़्बे को हमारा क्रान्तिकारी सलाम। लेकिन आज हर उस महान क्रान्तिकारी जिसने इस देश को आज़ाद कराने के लिए अकूत बलिदान दिये है के नाम पर तथाकथित समाजसेवी और नेता-मन्त्री अपना उल्लू सीधा करने, वोट बैंक या संकीर्ण हितों के लिए उन्हें अपने-अपने तरीक़े से हमारे देश के महान क्रान्तिकारियों के नाम का फ़ायदा उठाते हैं। उनमें से कई लोग/संगठन/पार्टियाँ दलित (कम्बोज जाति) परिवार में पैदा होने की वजह से उन्हें दलित क्रान्तिकारी के तौर पर, तो कोई सिख धर्म में विश्वास होने की वजह से सिख क्रान्तिकारी, पंजाब में पैदा होने की वजह से पंजाबी क्रान्तिकारी और एक अंग्रेज़ अफ़सर को मारने की वजह से कट्टरवादी-राष्ट्रवादी स्थापित करने में लगे हैं। ये लोग हमारे असली क्रान्तिकारियों की तस्वीर को हर-हमेशा आधे-अधूरे व ग़लत ढंग से पेश करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। आज का पूँजीपतियों की सेवा में लगा गोदी, मुनाफ़ाखोर और मौक़ापरस्त मीडिया भी कर रहा है। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, चन्द्र शेखर आज़ाद से लेकर उधम सिंह तक को केवल जुनूनी देशभक्ति की भावना से प्रेरित युवाओं के रूप में पेश किया जाता है, जिन्होंने देश के लिए अपने प्राण त्याग दिये। ये सभी क्रान्तिकारी भारत को सिर्फ़ अंग्रेज़ी हुकूमत से आज़ाद कराने के लिए नहीं बल्कि हर तरह की शोषक व्यवस्था से आज़ाद कराने के लिए संघर्षरत थे। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद दोनों को ध्वस्त कर एक समतामूलक समाज की स्थापना उनका लक्ष्य था। उन्होंने इस देश की जनता को आज़ादी से पहले ही चेता दिया था कि अगर हम धर्म या जाति के नाम पर आपस में झगड़ते रहेंगे, तो देश आज़ाद होने के बाद गोरे साहब की जगह भूरे साहब आ जायेंगे और इस देश की मेहनतकश आबादी का शोषण बदस्तूर जारी रहेगा।

आज़ादी से पहले जिस तरह किसानों और मज़दूरों का शोषण हो रहा था, वो आज भी बदस्तूर जारी है। देश की मेहनतकश अवाम के माथे से गुलामी का कलंक आज भी नहीं हटा है। ऐसे में बिना समय गँवाये शहीद उधम सिंह जैसे तमाम क्रान्तिकारी देशभक्तों के सन्देश को याद करते हुए हमें इस शोषक-उत्पीड़क पूँजीवादी लुटेरी व्यवस्था को बदलने के लिए इसके ख़िलाफ़ मोर्चा खोल दे और असली मुद्दे - जैसेकि बेरोज़गारी, महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा - को उठायें। अगर आप भी इस शोषक व्यवस्था के बरक्स एक शोषण-मुक्त समतामूलक समाज में जीना चाहते हैं तो आइए! इस क्रान्तिकारी जनजागरण की मुहिम में शामिल हों!

अर्जेण्टीना में गम्भीर आर्थिक संकट - वर्ग संघर्ष तेज़ हुआ

- रणबीर

गुज़री 8 जून को अर्जेण्टीना की सरकार का अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ़) के साथ एक बेहद जनविरोधी समझौता हुआ। इस समझौते के तहत मुद्रा कोष अर्जेण्टीना को 500 करोड़ अमेरिकी डॉलर का क़र्ज़ देगा। अर्जेण्टीना की मॉरिसियो माकरी सरकार लगातार मुद्रा कोष के सामने क़र्ज़ देने के लिए गिड़गड़ा रही थी। आखिर माकरी सरकार का यह गिड़गिड़ाना कामयाब हुआ। वास्तव में मुद्रा कोष की ऐसी कभी भी कोई मंशा नहीं थी कि क़र्ज़ ना दिया जाये। वह सख़्त से सख़्त शर्तों के तहत क़र्ज़ देना चाहता था। इसके लिए उसने अनेकों साज़िशों का भी सहारा लिया। अर्जेण्टीना के मज़दूर व अन्य मेहनतकश लोग सरकार द्वारा आईएमएफ़ से किये समझौते के सख़्त खिलाफ़ हैं। लाखों लोगों ने बार-बार सड़कों पर उतर ऐसा कोई भी समझौता न करने के लिए सरकार पर दबाव बनाया, लेकिन घोर जनविरोधी माकरी सरकार ने जनता की एक भी ना सुनी।

पूँजीवादी व्यवस्था के विश्व स्तर पर छाये आर्थिक संकट के बादल अर्जेण्टीना में ज़ोरों से बरस रहे हैं। मुनाफ़े की दर बेहद गिर चुकी है। माँग में ज़ोरदार गिरावट आयी है व औद्योगिक उत्पादन भी गिर चुका है। आयात के मुकाबले निर्यात काफ़ी गिर चुका है। बेरोज़गारी की दर 9 प्रतिशत पार कर चुकी है। महँगाई दर 40 प्रतिशत को पार कर रही है। अर्जेण्टीना के केन्द्रीय बैंक को ब्याज़ दरें बढ़ाकर 40 प्रतिशत करनी पड़ी हैं, फिर भी महँगाई को लगाम नहीं लग रही, बल्कि इससे संकट और भी गहराता जा रहा है। सरकार का बजट घाटा आसमान छू रहा है यानी सरकार के ख़र्चे आमदनी से कहीं अधिक बढ़ चुके हैं। इसका कारण यह नहीं है कि सरकार जनता को हद से अधिक सहूलतें दे रही है (जिस तरह कि अर्जेण्टीना का पूँजीपति वर्ग व साम्राज्यवादी प्रचारित करते हैं) बल्कि इसका कारण पूँजीपतियों दी जा रही छूटें, सहूलतें हैं। विदेशी क़र्ज़ तेज़ी से बढ़ रहा है। बजट घाटा ख़त्म करने, महँगाई को लगाम कसने, विदेशी क़र्ज़ वापिस करने के लिए पूँजीपतियों की आमदनी पर बड़े टेक्स लगाने, कालाबाज़ारी रोकने, मालों के दाम बढ़ने से रोकने के लिए पूँजीपतियों पर बन्दिशें लगाने की जगह अर्जेण्टीना की सरकार द्वारा पूँजीपति वर्ग व साम्राज्यवाद के हितों के मुताबिक़ मज़दूरों व मेहनतकश जनता के अधिकारों पर डाका डालने की नीति अपनायी गयी है।

1 जून 2018 को अर्जेण्टीना के ख़ज़ाना मन्त्री निकोलस डूजोवने ने सरकार द्वारा जनता पर किये जाने वाले ख़र्च में 78 करोड़ अमेरिकी डॉलर की कटौती का ऐलान किया था। इसका मतलब था जनता को सरकार द्वारा बिजली, तेल, शिक्षा स्वास्थ्य, रोज़गार आदि सम्बन्धी दी जाने वाली सहूलतों/सब्सिडियों/अधिकारों पर कटौती। यह बड़ी कटौती पहले की जा रही कटौतियों की ही अगली कड़ी थी। मुद्रा कोष का कहना है कि माकरी सरकार की आर्थिक सुधारों की रफ़्तार बहुत धीमी है और इससे बजट घाटे पर क़ाबू नहीं पाया जा सकता। शर्त रखी गयी कि अगर क़र्ज़ हासिल करना है तो आर्थिक सुधारों को तेज़ी से लागू किया जाये यानी उदारीकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों के तहत आर्थिक सुधारों की रफ़्तार तेज़ की जाये।

अर्जेण्टीना से सबसे अमीर व्यक्तियों में से एक का बेटा, उद्योगपति मॉरिसियो माकरी 10 दिसम्बर 2015 को अर्जेण्टीना का राष्ट्रपति बना था। आम चुनाव में तीन पार्टियों के गठबन्धन 'कैम्बीमोस' (पीआरओ, यूसीआर व सीसी) की बड़ी जीत थी। पिछले दस साल से अर्जेण्टीना में तथाकथित वाममोर्चे की सरकार थी। इस तथाकथित वाममोर्चे की सरकार द्वारा समाजवाद के नाम पर वास्तव में तथाकथित जनकल्याण की कीनसिआई पूँजीवादी नीतियाँ ही लागू की जा रही थीं। इसके तहत लोगों को एक हद तक सहूलतें भी हासिल हुईं। अर्जेण्टीना की सन् 2001 की महामन्दी के बाद की आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों में अर्जेण्टीना के पूँजीपति वर्ग को एक ऐसी ही सरकार की ज़रूरत थी जो पूँजीपति वर्ग के हितों की रखवाली भी करती हो और जनसंघर्ष पर ठण्डे पानी के छींटे मारने में भी कामयाब हो सके। नक़ली वामपन्थी ऐसा बख़ूबी कर सकते हैं। यही काम इन्होंने किया। इन्होंने एक हद तक विदेशी निवेश, विदेशी क़र्ज़, आदि पर रोक तो लगायी लेकिन कभी भी साम्राज्यवाद से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं किया। पूँजीवादी व्यवस्था के संकट ने धीरे-धीरे बढ़ना ही था। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के आर्थिक संकट बढ़ने से इसकी हालत और भी गिर गयी। ऐसी परिस्थिति में माकरी सरकार जैसे हुकमरान की ज़रूरत थी जो कट्टर पूँजीवादी नीतियाँ लागू करने का पक्षधर हो। माकरी ने 2015 के अन्त में हुए चुनावों में खुलकर ऐलान किया कि विश्व बैंक व अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ मिलकर काम किया जायेगा, सब्सिडियों आदि पर कट लगाकर बजट घाटा घटायेगा, विदेशी क़र्ज़, विदेशी निवेश पर लगी रोकें हटायेगा। रोज़गार पैदा करने, स्त्री अधिकारों की बहाली, महँगाई को लगाम देने, स्वास्थ्य-शिक्षा व्यवस्था में सुधार करने, भ्रष्टाचार के ख़ात्मे आदि के अनेकों लोकरंजक वादे भी किये गये। लेकिन इस सबके लिए उसने निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों की ज़रूरत को खुलकर उभारा। देसी-विदशी पूँजीपतियों ने माकरी की चुनावों में पुरज़ोर मदद की जिसके सहारे उसकी सरकार बनी। माकरी सरकार का यह साफ़ मानना था कि पूँजी निवेश को बढ़ाने के लिए उज़रतों पर ख़र्चे घटाने होंगे और पूँजीपतियों पर टेक्स कम करने होंगे।

माकरी सरकार ने शुरू से ही पूँजीपतियों के साथ अपने वादे पूरे करने शुरू कर दिये। पहले महीने में ही दस हज़ार से ऊपर कर्मचारियों को नौकरी से निकाल दिया गया। बिजली की क़ीमतें 500 प्रतिशत तक बढ़ा दी गयीं। घरेलू गैस व परिवहन की क़ीमतें बढ़ा दी गयीं। शिक्षा पर सरकारी ख़र्च घटा दिया गया। 8 जनवरी 2017 सामाजिक सुरक्षा ख़र्च (बुजुर्गों, अपाहिजों, बच्चों आदि के लिए पेंशनों आदि) में 340 करोड़ डॉलर की कटौती का प्रस्ताव पेश किया गया। इस तरह 1 करोड़ 70 लाख लोगों को मिलने वाले लाभ में बड़ी कटौती कर दी गयी। स्वास्थ्य सुविधाओं पर बड़े कट लगा दिये गये। म्युनिसिपल कमेटियों के लिए फ़ण्ड कम कर दिये गये।

नवम्बर 2017 के अन्त में 23 प्रान्तों के गवर्नरों ने माकरी सरकार से एक वित्तीय समझौता किया कि वह कारोबारों पर लगाये जाने वाले टेक्स घटायेंगे और जनसुविधाओं पर ख़र्चों में कटौती करेंगे। पूँजीपति वर्ग के पक्ष में श्रम सुधारों की ओर बड़े क़दम उठाये गये। महँगाई घटाने का वादा करने वालों के राज में 2016 ख़त्म होते-होते महँगाई दर 40 प्रतिशत तक पहुँच गयी। जबकि पिछले सात वर्ष में महँगाई दर 20 प्रतिशत थी। जनवरी में माकरी सरकार ने इस साल सरकारी कर्मचारियों के वेतन न बढ़ाने और बड़े स्तर पर छँटनियों का ऐलान कर दिया। माकरी राज के दौरान अर्जेण्टीना मुद्रा पेसो की क़ीमत डॉलर के मुकाबले लगातार गिरती गयी है।

मुद्रा कोष ने माकरी सरकार के आर्थिक सुधारों को धीमी गति से किये जा रहे सुधार बताया। मुद्रा कोष ने विदेशी निवेशकों को अर्जेण्टीना में निवेश करने से रोकना शुरू कर दिया। इससे संकट और भी बढ़ गया। मई-जून में पेसो की क़ीमत तेज़ी से गिरी। पहली मई 2018 को पेसो की क़ीमत डॉलर के मुकाबले 20.5996 पेसो थी जो 15 जून होने तक 27.5500 हो गयी। यानि सिर्फ़ डेढ़ महीने में ही लगभग 34 प्रतिशत की गिरावट। बड़े पैमाने पर जमाखोरी होने लगी। महँगाई बहुत अधिक बढ़ गयी। मई महीने में सिर्फ़ आठ दिनों में ही केन्द्रीय बैंक ने ब्याज़ दरें 40 प्रतिशत बढ़ा दीं। पेसो के प्रति अविश्वास और अधिक तेज़ी से बढ़ा और डॉलर जमा करने में बेहद तेज़ी आ गयी। इस दौरान और भी बड़े पैमाने पर जनसुविधाओं पर ख़र्चे में कटौती की गयी। इस तरह 1 जून 2018 को 780 मिलीयन डॉलर की कटौती का ऐलान किया गया। 8 जून 2018 को आईएमएफ़ के साथ अर्जेण्टीना सरकार का 500 करोड़ बिलीयन डॉलर का समझौता हो गया। सन् 1975 में अर्जेण्टीना का कुल विदेशी क़र्ज़ 40 करोड़ डॉलर था, जो कि 1982 में बढ़कर 400 करोड़ डॉलर और सन् 2001 की आर्थिक मन्दी के समय 1400 करोड़ डॉलर तक जा पहुँचा था। साल 2018 में अर्जेण्टीना पर 2160 करोड़ डॉलर का विदेशी क़र्ज़ है। इससे अर्जेण्टीना की हालत का अन्दाज़ा बख़ूबी लगाया जा सकता है। अर्जेण्टीना का मौजूदा संकट सन् 2001 के संकट से कहीं अधिक गम्भीर आर्थिक संकट है।

इस सारी हालत में अर्जेण्टीना में वर्ग संघर्ष तेज़ कर दिया है। कारख़ाना मज़दूर, ट्रक डाइवर, शिक्षक, छात्र, स्त्रियाँ, बुजुर्ग, छोटे काम-धन्धे वाले मेहनतकश तबक़े लाखों की संख्या में जुझारू संघर्ष के मैदान में हैं। भले ही सरकार पक्षधर यूनियन नेता जनता के गुस्से को किसी न किसी तरह क़ाबू में रखने के लिए पुरज़ोर कोशिशें करते रहे और सरकार ने दमन का रास्ता अपनाया, लेकिन जनाक्रोश शान्त नहीं हो पर रहा है। जनता सरकार द्वारा जनसुविधाओं पर सरकारी ख़र्च में कटौती का ज़बरदस्त विरोध कर रही है और मुद्रा कोष से समझौते के सख़्त खिलाफ़ है। बेहिसाब मुसीबतों का कारण बनी सन् 2001 की आर्थिक मन्दी को लोग भूले नहीं हैं जिसका कारण वे अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष को मानते हैं।

यहाँ हम पिछले डेढ़ वर्षों में हुए संघर्षों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

6 मार्च 2017 को हज़ारों अध्यापकों व मज़दूरों का रोष प्रदर्शन हुआ। अगले दिन 7 मार्च को 4 लाख मज़दूरों का सैलाब देश की राजधानी ब्यूनस आयर्स की सड़कों पर उतर आया। 8 मार्च को अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के अवसर पर स्त्री मज़दूरों की हड़ताल हुई जिसके दौरान पलाजा डे मोइयो पर 3 लाख लोगों का प्रदर्शन हुआ। 22 मार्च को पूरे देश में 4 लाख अध्यापकों ने सार्वजनिक शिक्षा पर कटौती के खिलाफ़ सरकार के खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द की। 24 मार्च को सन् 1976 में हुए फ़ौजी तख़्तापलट की 41वीं वर्षगाँठ पर इससे भी कहीं अधिक लोग रोष प्रदर्शनों में शामिल हुए, इसमें जहाँ लोगों ने फ़ौजी तानाशाही में मारे गये, दमन का शिकार हुए लोगों को याद किया वहीं माकरी सरकारी की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ़ ज़ोरदार आवाज़ बुलन्द की।

6 अप्रैल 2017 को पूरे देश में 90 प्रतिशत मेहनतकश लोग आम हड़ताल में शामिल हुए। पूरे देश में चक्का जाम कर दिया गया। माकरी सरकार के 15 महीनों के दौरान यह पहली आम हड़ताल थी। सन् 2017 के अगले महीनों में भी लगातर प्रदर्शन होते रहे। 29 जून को रेडीकल वामपन्थी ग्रुपों द्वारा आह्वान पर राजधानी में आर्थिक ग़ैरबराबरी, बेरोज़गारी, जनविरोधी नीतियों के खिलाफ़ ज़ोरदार प्रदर्शन हुआ। सड़क से क़ब्ज़ा हटाने के लिए पुलिस ने दमन का सहारा लिया। इस दौरान ज़ोरदार झड़पें हुईं व अनेकों गिरफ़्तारियाँ हुईं। दिसम्बर 2017 में अनेकों बार राजधानी में पेंशनों पर कटौती के खिलाफ़ हज़ारों लोगों के ज़ोरदार विरोध प्रदर्शन हुए। लोगों ने अर्जेण्टीना की कांग्रेस (संसद) के बाहर दरवाज़ों के आगे कूड़े के बैरीकेड लगाकर आग लगा दी और सैन्य पुलिस पर पत्थर बरसाये। सैन्य पुलिस ने रबड़ की गोलियों की बौछार, आँसू गैस के गोले, व पानी की तोपों से लोगों पर क़हर बरपाया। 18 दिसम्बर को दूसरी आम हड़ताल हुई जिसके दौरान पूरा देश ठप रहा। इस दौरान हुई झड़पों में 60 लोगों की गिरफ़्तारी हुई, 160 से अधिक जख्मी हुए। पुलिस ने भारी क़हर बरपाते हुए पाँच व्यक्तियों की आँखों में रबड़ की गोलियाँ दाग़ दीं। अनेकों स्त्रियों की छातियों में रबड़ की गोलियाँ दागी गयीं।

नये वर्ष के अवसर पर 4 जनवरी को राजकीय मज़दूरों की एसोसिएशन के आह्वान पर वेतन में वृद्धि, छँटनियाँ रद्द करने आदि मुद्दों पर 24 घण्टों की राष्ट्रीय हड़ताल की गयी। 3 जनवरी को राजधानी के हवाई अड्डों के कर्मचारियों ने हड़ताल की। 23 जनवरी को अस्पताल के स्टाफ़ की देश स्तरीय हड़ताल और रोष प्रदर्शन हुए।

2 फ़रवरी 2018 को ट्रक डाइवरों और अन्य मेहनतकश लोगों का जुटान राजधानी में हुआ। रिपोर्टों के मुताबिक़ इस जुटान में 4 लाख लोग शामिल थे। वे मज़दूरों की छँटनियाँ, श्रम सुधारों, पेंशनों में कटौती व अन्य सरकारी नीतियों के खिलाफ़ सड़कों पर उतरे थे। 15 फ़रवरी से 21 फ़रवरी तक अनेकों यूनियनों द्वारा देश स्तरीय प्रदर्शन किये गये। 19 अप्रैल को बिजली की क़ीमतों में वृद्धि के खिलाफ़ बड़ा प्रदर्शन हुआ। राष्ट्रपति माकरी ने 8 मई को ऐलान किया कि मुद्रा कोष से समझौते की प्रक्रिया चल रही है। इसके खिलाफ़ अगले दिन से ही ज़ोरदार प्रदर्शन शुरू हो गये। ऐसा ही एक प्रदर्शन 25 मई को हुआ। लोगों की माँग थी कि मुद्रा कोष के साथ किसी भी तरह का कोई समझौता न किया जाये। उनके हाथों में "देश ख़तरे में है", "अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष मुर्दाबाद" आदि बैनर थे। प्रदर्शनकारियों का कहना था कि सरकार जनविरोधी नीतियाँ रद्द करके जनता के अधिकार बहाल करे। वे कह रहे थे कि सरकार विश्व फुटबॉल कप या मेसी के ज़रिये उनका ध्यान अधिकारों के संघर्ष से हटा नहीं पायेगी।

25 जून को मुद्रा कोष के साथ समझौते व अन्य मुद्दों पर पूरे देश में आम हड़ताल हुई। गुज़री 20 जुलाई को अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के चीफ़ क्रिस्टीने लेगार्दे के अर्जेण्टीना आने पर लोगों ने उसका स्वागत ज़ोरदार प्रदर्शनों और सड़कें जाम करके किया।

अर्जेण्टीना के पूँजीवादी आर्थिक संकट ने जहाँ मज़दूरों-मेहनतकशों पर दुख-तकलीफ़ों का पहाड़ लाद दिया है, वहीं यह भी स्पष्ट है कि पूँजीवादी-साम्राज्यवादियों को वे कभी चैन की नींद भी नहीं सोने देंगे।

बैंक कर्ज दबाए बैठे पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ मोदी सरकार की 'सख़्त' कार्रवाई!

मोनेट इस्पात पर 11573 करोड़ रुपये कर्ज़ वसूली का मामला दिवालिया अदालत में था। उसने कम्पनी को इस रकम के 22.41% यानी लगभग 2500 करोड़ में जिंदल स्टील को सौंप दिया यानी शेष 77.59% रकम अब बैंक मेहनतकश जनता से वसूल करेंगे, कुछ न्यूनतम बैलेंस आदि पर शुल्क काटकर, कुछ सरकार हमसे जबरन वसूली कर उन्हें देगी। भक्तों का कुतर्क होगा कि कर्ज़ दबाने वाले से तो कम्पनी छिन गई, तो जान लीजिए कि कर्ज़ दबाने वाला जाजोदिया नये मालिक जिंदल का बहनोई है, यानी 11,500 करोड़ कर्ज़ में से चौथाई रकम जमा कर यह परिवार पूरी कर्ज़ मुक्त कम्पनी का मालिक बन गया है। एक तरह से ग़रीब लोगों से 9000 करोड़ रुपये जबरन छीनकर जिंदल और जाजोदिया को दिया गया है। पूंजीवादी 'जनतंत्र' के सारे नियम क़ानूनों के 'न्याय' का सार यही है।

- मुकेश असीम

भुखमरी का शिकार देश : ये मौतें व्यवस्था के हाथों हुई हत्याएँ हैं!

(पेज 11 से आगे)|

वर्ष सरकार द्वारा लगभग 27.95 करोड़ टन उत्पादन की सम्भावना दर्शायी गयी है, जो पिछले पाँच सालों के औसत उत्पादन से 1.73 करोड़ टन ज़्यादा है। चावल का उत्पादन 1.2 फ़ीसदी, गेहूँ का उत्पादन 1.42 फ़ीसदी बढ़ने के आसार हैं। लेकिन भारत सरकार के खाद्य निगम के गोदामों में हर साल लाखों टन अनाज चूहों की भेंट चढ़ जाता है, बचाव सामग्री के अभाव में बारिश में सड़ा दिया जाता है। रोज़ाना देश में 244 करोड़ रुपये के खाद्यान बर्बाद कर दिये जाते हैं और हर साल 89,635 करोड़ रुपये की क़ीमत का खाद्यान फेंक दिया जाता है। 40 फ़ीसदी फल और सब्ज़ियाँ व 30 फ़ीसदी अनाज आपूर्ति प्रबन्धन की अक्षमता की वजह से बर्बाद हो जाते हैं। 2018 तक पिछले पाँच वर्षों में भारतीय खाद्य निगम ने 57,676 टन अनाज बर्बाद कर दिया। 2.1 करोड़ टन - लगभग ऑस्ट्रेलिया के गेहूँ उत्पाद के बराबर गेहूँ; हर साल भारत में सड़ा दिया जाता है। इतनी उत्पादकता, इतनी उर्वर ज़मीन के बावजूद अगर आज देश की बड़ी आबादी कुपोषण का शिकार है तो दिक़्क़त किसी ओर ही वजह से है! 2010 में सुप्रीम कोर्ट के गोदामों में सड़ रहे अनाज को ग़रीब जनता में बाँट देने के आदेश को अनसुना करते हुए मनमोहन सिंह की सरकार ने बेशर्मी से साफ़ ज़ाहिर कर दिया था कि सरकार की पक्षधरता आम जनता की तरफ़ नहीं बल्कि फ़ूड कॉर्पोरेट मालिकों की तरफ़ है और ग़रीब जनता में खाद्यान बाँटने का मतलब बड़े मालिकों का मुनाफ़ा घटाना है। वैसे भी सरकार के तहत मिलने वाली 'फ़ूड सब्सिडी' का 60 फ़ीसदी हिस्सा तो ज़रूरतमन्दों तक पहुँच ही नहीं पाता है, और बिचौलियों के हत्थे चढ़ जाता है! सरकार को गोदामों में अनाज सड़ा देना मंज़ूर है लेकिन पूँजीपतियों के मुनाफ़े में एक पैसे की कमी भी ये बर्दाश्त नहीं कर सकते। इनके लिए आम जनता के बच्चों की बलि चढ़ा देना ज़्यादा सुविधाजनक है! सिर्फ़ खाद्यान ही नहीं, हर तरह के उत्पाद लोगों में बाँटने की बजाय बर्बाद कर दिये जाते हैं। हाल में ही ब्रिटिश कम्पनी 'बरबेरी' ने 2.86 करोड़ ब्रिटिश डॉलर मूल्य के कपड़ों व अन्य सामग्री को आग लगाकर तबाह कर दिया। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन लोगों की ज़रूरतें पूरी करने के मक़सद से नहीं किया जाता, बल्कि चन्द घरानों के 'मुनाफ़े' के लिए किया जाता है। इस व्यवस्था का संकट 'अतिउत्पादन' का संकट है। देश के बाज़ारों-शॉपिंग मॉलों में सामान पटे पड़े रहते हैं और दूसरी ओर बेरोज़गारी की शिकार एक बड़ी आबादी अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतें पूरा कर पाने लायक सामान ख़रीदने की भी हैसियत नहीं रख पातीं। इस व्यवस्था में भुखमरी कोई 'रोग' नहीं जिससे निजात पाना असम्भव हो, वह तो सिर्फ़ एक लक्षण है। मुनाफ़े और पैसे पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था के ख़ात्मे के बग़ैर इस लक्षण से छुटकारा पाना नामुमकिन है। भुखमरी से होने वाली ये मौतें महज़ मौतें नहीं बल्कि व्यवस्था-जनित निर्मम हत्याएँ हैं! आज नहीं तो कल पूँजीवादी व्यवस्था को हमें कटघरे में खड़ा करना ही पड़ेगा, इन हत्याओं के ज़िम्मेदारों को सज़ायाफ़्ता करना ही पड़ेगा!!

यही मौका है

नवारुण भट्टाचार्य

यही मौका है, हवा का रुख है
ग़रीबों को भगाने का
मज़ा आ गया, भगाओ ग़रीबों को
कनस्तर पीट कर जानवरों को भगाते हैं जैसे
हवा चल पड़ी है
ग़रीब अब सही फँसे हैं
राक्षस की फूँक से उनकी झोपड़ी उड़ जा रही है
पैरों तले सरकती ज़मीन
और तेज़ी से गायब हो रही है
मज़ा ले-लेकर यह मंज़र भोगने का
यही वक्त तय है
इतिहास का सीरियल चल रहा है
वक्त पैसा है और यही वक्त है
ग़रीबों को लूट मारने का

ग़रीब अब गहरे जाल में फँस गए हैं
वे नहीं जानते कि उनके साथ लेनिन है या लोकनाथ
वे नहीं जानते कि गोली चलेगी या नहीं!
वे नहीं जानते कि गाँव-शहर में कोई उन्हें नहीं चाहता
इतना न-जानना बुखार का चढ़ना है
जब इंसान तो क्या, घर-बार, बर्तन-बाटी
सब तितली बन उड़ जाते हैं
यही ग़रीब भगाने का वक्त कहलाता है
कवियों ने ग़रीबों का साथ छोड़ दिया है
उन पर कोई कविता नहीं लिख रहा
उनकी शक्ल देखने पर पैर जल जाते हैं
हवा चल पड़ी है, यही मौका है
ग़रीबों को भगाने का
कनस्तर पीट कर जानवरों को भगाते जैसे
मौका है ग़रीबों को भगाने का
यही मौका है, हवा चल पड़ी है।

(अनुवाद - लाल्टू)

असम के 40 लाख से अधिक लोगों से भारतीय नागरिकता छिनी

(पेज 8 से आगे)|

से यही कुछ हो रहा है। कई लोग कई-कई वर्षों से अपने जीवनसाथी को नहीं मिल पाये हैं। बीमारी, विवाह आदि अवसरों पर उन्हें पैरोल भी नहीं मिलती, क्योंकि पैरोल तो सिर्फ़ भारतीय नागरिकों को ही मिल सकती है। अन्तरराष्ट्रीय व भारतीय क़ानूनों की भी यहाँ धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं। अन्तरराष्ट्रीय क़ानून के मुताबिक़ प्रवासियों को जेल में अपराधियों की तरह बन्द करके नहीं रखा जा सकता और उनके परिवारों से अलग नहीं किया जा सकता।

असम में जो रहा है, वह भारतीय पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों के मुताबिक़ है। बड़े स्तर पर मुस्लिमों और अन्य अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ नफ़रत भड़काना, क्षेत्र-नस्ल-जाति-भाषा-धर्म आधारित फूट डालना, अन्ध-राष्ट्रवाद भड़काना, जनता का ध्यान वास्तविक मुद्दों से हटाकर ग़ैर-मुद्दों की तरफ़ ले जाना, इसकी ज़रूरत है। इस काम के लिए पूँजीपति वर्ग ने आरएसएस/भाजपा को सबसे आगे किया हुआ है। अन्य सभी साम्प्रदायिक-क्षेत्रवादी-नस्लवादी पार्टियाँ -संगठन इसी ज़रूरत के मुताबिक़ ही काम कर रहे हैं।

हर इंसाफ़पसन्द व्यक्ति को इस दमन-अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करनी चाहिए। पूँजीपति वर्ग की चुनावी पार्टियों और संगठनों के ज़रिये यह समस्या हल नहीं हो सकती। इसका हल सिर्फ़ यह है कि जनता को उसके बुनियादी मुद्दों पर संगठित किया जाये ताकि जनता देश-धर्म-जाति-क्षेत्र-भाषा-नस्ल के आधार पर आपस में लड़ने की जगह पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ बुनियादी मुद्दों पर संघर्ष करे, जनता को आपस में बाँटने-लड़ाने, देश-धर्म-जाति-क्षेत्र-नस्ल आदि के आधार पर होने वाले अन्याय-दमन के ख़िलाफ़ संघर्ष कर सके। अन्तिम रूप में, समाजवादी क्रान्ति के ज़रिये क़ायम हुआ मज़दूर वर्ग का राज ही देश-धर्म-जाति-नस्ल-भाषा-नस्ल के नाम पर हो रहे दमन-अत्याचार-अन्याय का ख़ात्मा कर सकता है, क्योंकि तब इसकी ज़रूरत ही नहीं रहेगी। इसलिए वर्गीय एकता और संघर्ष के लिए ज़ोरदार कोशिशें करना ही आज वक़्त की ज़रूरत है।

साल-दर-साल बाढ़ की तबाही : महज़ प्राकृतिक आपदा नहीं मुनाफ़ाख़ोर पूँजीवादी व्यवस्था का कहर

(पेज 9 से आगे)

को नहीं कर रही हैं?

इसकी वजह साफ़ है। कोई भी पूँजीपति घराना और सरकार ऐसे कामों में पूँजी निवेश को तैयार नहीं है। लेकिन यह मजबूरी इस पूँजी केन्द्रित व्यवस्था की है। एक मानव-केन्द्रित व्यवस्था इस समस्या का समाधान मानव श्रम को गोलबन्द और संगठित करके आसानी से कर सकती है। इसकी जीती-जागती मिसाल चीन का समाजवादी प्रयोग था। चीन में जब समाजवादी व्यवस्था क़ायम थी, यानी माओ की मृत्यु तक, तो मज़दूरों की सत्ता ने ह्वांगहो नदी की पूरी दिशा मोड़ दी थी और चीन के एक बहुत बड़े हिस्से को हर साल आने वाली बाढ़ की विभीषिका से हमेशा के लिए बचा लिया था। नदियों के किनारे बसे गाँवों-शहरों के लाखों लोग अपने-अपने इलाक़े में नदियों से भारी पैमाने पर गाद निकालते थे और तटबन्ध बनाते थे। इस तरह बेहद कम ख़र्च में बाढ़ की समस्या को काफ़ी हद तक हल कर दिया था। चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद एक बार फिर बाढ़ एक समस्या के रूप में उभरना शुरू हो गयी है। लेकिन इतना तो चीन के महान समाजवादी प्रयोग ने साबित कर ही दिया कि बाढ़ कोई ऐसी प्राकृतिक आपदा नहीं है जिससे बचा न जा सके। एक मानव-केन्द्रित समाजवादी व्यवस्था के पास इस समस्या का इलाज है और वह इस समस्या को दूर कर सकती है और एक नकारात्मक शक्ति को मानव मेधा का इस्तेमाल कर उसके विपरीत यानी एक सकारात्मक शक्ति में बदल सकती है।

लेकिन यह सब इस व्यवस्था में सम्भव नहीं है। मुट्ठी-भर मुनाफ़ाख़ोरों, मुर्दाख़ोरों और कफ़नखसोटों के मुनाफ़े की ख़ातिर ऐसे तमाम ज़रूरी कामों और योजनाओं को ठण्डे बस्ते में डाले रखा जायेगा, पर्यावरण को तबाह करते रहा जायेगा और हर साल हज़ारों लोग बाढ़ में मरते रहेंगे, करोड़ों लोग बेघर होते रहेंगे और अपनी आजीविका के साधन गँवाते रहेंगे। इस बरबादी पर नेता, नौकरशाह, पूँजीपति और ठेकेदार अपने मुनाफ़े का जश्न मनाते रहेंगे और चुनावी गोटियाँ लाल करते रहेंगे। आपदा प्रकृति नहीं है बल्कि आपदा यह मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था है। जब तक मानवता इससे निजात नहीं पायेगी, तब तक बाढ़ की विभीषिका से भी निजात नहीं मिलने वाली।

पन्द्रह अगस्त के अवसर पर कुछ कविताएँ

कौन आज़ाद हुआ

– अली सरदार जाफ़री

कौन आज़ाद हुआ
किसके माथे से ग़ुलामी की सियाही छूटी
मेरे सीने में अभी दर्द है महक़ूमी का
मादरे-हिन्द के चेहरे पर उदासी है वही
कौन आज़ाद हुआ...
ख़ंजर आज़ाद है सीनों में उतरने के लिए
मौत आज़ाद है लाशों पे गुज़रने के लिए
कौन आज़ाद हुआ...

काले बाज़ार में बदशक़्ल चुड़ैलों की तरह
कीमतें काली दुकानों पे खड़ी रहती हैं –
हर ख़रीदार की जेबों को कतरने के लिए
कौन आज़ाद हुआ...
कारख़ानों में लगा रहता है
साँस लेती हुई लाशों का हुजूम
बीच में उनके फिरा करती है बेकारी भी
अपने खूँख़ार दहन खोले हुए
कौन आज़ाद हुआ...

रोटियाँ चकलों की कहवाएँ हैं
जिनको सरमाये के दल्लालों ने
नफ़ाख़ोरी के झरोखों में सजा रखा है
बालियाँ धान की, गेहूँ के सुनहरे गोशे
मिस्रो-यूनान के मजबूर ग़ुलामों की तरह
अजनबी देश के बाज़ारों में बिक जाते हैं
और बदबख़्त किसानों की तड़पती हुई रूह
अपने अफ़लास में मुँह ढाँप के सो जाती है
कौन आज़ाद हुआ...

राष्ट्र गीत में भला कौन वह
भारत-भाग्य-विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है।
मखमल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चंवर के साथ
तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय-जय कौन कराता है।
पूरब-पच्छिम से आते हैं
नंगे-बूचे नर कंकाल
सिंहासन पर बैठा उनके
तमगे कौन लगाता है।
कौन-कौन वह जन-गण-मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन-बेमन जिसका
बाजा रोज़ बजाता है।

– रघुवीर सहाय

26 जनवरी, 15 अगस्त...

– नागार्जुन

किसकी है जनवरी,
किसका अगस्त है?
कौन यहाँ सुखी है, कौन यहाँ मस्त है?

सेठ है, शोषक है, नामी गला-काटू है
गालियाँ भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है
चोर है, डाकू है, झुठा-मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा-लबार है
जैसे भी टिकट मिला
जहाँ भी टिकट मिला

शासन के घोड़े पर वह भी सवार है
उसी की जनवरी छब्बीस
उसी का पन्द्रह अगस्त है
बाक़ी सब दुखी है, बाक़ी सब पस्त है.....

कौन है खिला-खिला, बुझा-बुझा कौन है
कौन है बुलन्द आज, कौन आज मस्त है?
खिला-खिला सेठ है, श्रमिक है बुझा-बुझा
मालिक बुलन्द है, कुली-मजूर पस्त है
सेठ यहाँ सुखी है, सेठ यहाँ मस्त है
उसकी है जनवरी, उसी का अगस्त है

पटना है, दिल्ली है, वहीं सब जुगाड़ है
मेला है, ठेला है, भारी भीड़-भाड़ है
फ्रिज है, सोफ़ा है, बिजली का झाड़ है
फ़ैशन की ओट है, सब कुछ उघाड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है

गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन लो
मास्टर की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन लो
मज़दूर की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो जी, गिन लो
बच्चे की छाती में कै ठो हाड़ है!
देख लो जी, देख लो जी, देख लो
पब्लिक की पीठ पर बजट पर पहाड़ है!

मेला है, ठेला है, भारी भीड़-भाड़ है
पटना है, दिल्ली है, वहीं सब जुगाड़ है
फ्रिज है, सोफ़ा है, बिजली का झाड़ है
महल आबाद है, झोपड़ी उजाड़ है
ग़रीबों की बस्ती में उखाड़ है, पछाड़ है
धत तेरी, धत तेरी, कुच्छो नहीं! कुच्छो नहीं
ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
ताड़ के पत्ते हैं, पत्तों के पंखे हैं

पंखों की ओट है, पंखों की आड़ है
कुच्छो नहीं, कुच्छो नहीं.....
ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है

किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है!
कौन यहाँ सुखी है, कौन यहाँ मस्त है!
सेठ ही सुखी है, सेठ ही मस्त है
मन्त्री ही सुखी है, मन्त्री ही मस्त है
उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त है!

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

प्रधान चौकीदार की देखरेख में रिलायंस ने की हज़ारों करोड़ की गैस चोरी और अब कर रही है सीनाज़ोरी

– मुकेश असीम

"गिद्ध बने बग़ैर पूँजीवादी व्यवस्था को नहीं चलाया जा सकता। तुम मुझे एक पूँजीपति दिखाओ और मैं तुम्हें एक परजीवी दिखा दूँगा।" – मैल्कम एक्स (अमेरिकी नस्लवाद-पूँजीवाद विरोधी नेता)

जुलाई का अन्तिम सप्ताह ही था जब प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने उत्तर प्रदेश में कथित रूप से हज़ारों करोड़ की विकास व निवेश परियोजनाओं की नींव रखते हुए देश के 50 बड़े पूँजीपतियों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि 'अगर नेक नीयत हो तो उद्योगपतियों के साथ खड़े होने में दाग़ नहीं लगता!' इसके 3-4 दिन बाद की ही बात है, जब 31 जुलाई को ठीक जिस समय पूरे देश की जनता को कॉर्पोरेट मीडिया के भोंपुओं द्वारा एनआरसी, आसामी-बंगाली, हिन्दू-मुस्लिम में उलझाया हुआ था, एक बड़ी ख़बर चुपके से पता चली कि 'चौकीदार' मोदी सरकार सेंधमार मुकेश अम्बानी की रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ से 30 हज़ार करोड़ रुपये की प्राकृतिक गैस चोरी का मुक़दमा अन्तरराष्ट्रीय मध्यस्थता पंचाट में हार गयी! आन्ध्र के कृष्णा-गोदावरी बेसिन में ओएनजीसी के गैस भण्डार में सेंध लगाकर रिलायंस द्वारा हज़ारों करोड़ रुपये की प्राकृतिक गैस चुराने का यह मामला कई साल से चल रहा था। इस पंचाट ने जो रिलायंस ओर मोदी सरकार की सहमति से चुना गया था, उसने ओएनजीसी की शिकायत को रद्द कर रिलायंस पर लगा 10 हज़ार करोड़ का वह जुर्माना हटा दिया जो 2016 में जस्टिस ए पी शाह आयोग द्वारा रिलायंस को दण्डित करने की सिफ़ारिश के चलते सरकार को लगाना पड़ा था। इससे भी बडी बात यह कि पंचाट ने आदेश दिया है कि अब उलटा सरकार को ही हरजाने के तौर पर लगभग 50 करोड़ रुपये रिलायंस को देने होंगे। लेकिन यह इस क़िस्म का पहला मामला नहीं है। 2016 में भारत सरकार और इसरो देवास मल्टीमीडिया के साथ ऐसा ही एक मध्यस्थता का मामला हार चुके हैं और उन्हें देवास को 4400 करोड़ रुपये 18% ब्याज के साथ चुकाने का फ़ैसला मानना पड़ा था।

पहले यह समझ लेते हैं कि मामला क्या था।

आन्ध्र प्रदेश की दो प्रमुख नदियों कृष्णा और गोदावरी के डेल्टा क्षेत्र में स्थित कृष्णा-गोदावरी (केजी) बेसिन कच्चे तेल और गैस का विशाल भण्डार माना जाता है। 1997-98 में भारत सरकार कच्चे तेल और गैस की खोज के लिए न्यू एक्सप्लोरेशन और लाइसेंस पॉलिसी (नेल्प) लेकर आयी। इस नीति का मुख्य मक़सद तेल खदान क्षेत्र में लीज के आधार पर सरकारी और निजी क्षेत्र की कम्पनियों को एक समान अवसर देना था। इस नीति से रिलायंस का प्रवेश तेल और गैस के अथाह भण्डार वाले इस क्षेत्र में हो गया। रिलायंस ने इन तेल-गैस क्षेत्रों में अपना अधिकार बनाना शुरू किया, जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी ओएनजीसी पहले से खुदाई कर रही थी।

धीरे-धीरे रिलायंस की ओर से मीडिया में ख़बरें आने लगीं कि उसे इस क्षेत्र में करोड़ों घनमीटर प्रतिदिन प्राकृतिक गैस उत्पादन करने वाले कुएँ मिल गये हैं। इन ख़बरों से रिलायंस के शेयर के बाज़ार मूल्य आसमान पर जा पहुँचे। 2008 में रिलायंस ने तेल और अप्रैल 2009 में गैस का उत्पादन शुरू किया। लेकिन हक़ीक़त यह थी कि रिलायंस को अपनी घोषणाओं के विपरीत बेहद कम तेल और गैस इन क्षेत्रों से प्राप्त हो रही थीं और पास के क्षेत्र में स्थित ओएनजीसी अपने कुओं से भरपूर मात्रा में तेल व गैस का उत्पादन कर रहा था।

2011 में केजी बेसिन में रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ की परियोजना से गैस उत्पादन में भारी गिरावट आयी और सरकार ने रिलायंस को ग़ैर-प्राथमिक क्षेत्र के उद्योगों को गैस की आपूर्ति बन्द करने का आदेश दिया। लेकिन रिलायंस ने इस्पात उत्पादन करने वाले समूहों को साथ लेकर सरकार पर दबाव बनाना शुरू किया। पेट्रोलियम मन्त्रालय और रिलायंस में यह विवाद गहराता चला गया। पेट्रोलियम मन्त्रालय का कहना था कि रिलायंस को लेखा महापरीक्षक (कैग) द्वारा ऑडिट कराना होगा, लेकिन रिलायंस इसके लिए तैयार नहीं हुआ। उसने इस क्षेत्र में अपने वादे के मुताबिक़ अरबों करोड़ का नया निवेश करने से भी इनकार कर दिया।

रिलायंस कम्पनी ने यह शर्त भी रखी कि वह अपने दस्तावेज़ लेखा महापरीक्षक के पास नहीं भेजेगा, लेखा परीक्षा उसके परिसर में होनी चाहिए और इस रिपोर्ट को पेट्रोलियम मन्त्रालय को सौंपी जाये, संसदीय लोकलेखा समिति (पीएसी) के तहत संसद को नहीं।

यूपीए सरकार में मुकेश अम्बानी की रिलायंस इतनी शक्तिशाली मानी जाती थी कि कहा जाता था कि मुकेश अम्बानी की मर्जी से पेट्रोलियम मन्त्री हटाये और बहाल किये जाते थे। उस सरकार में तीन पेट्रोलियम मन्त्री बदले गये थे जिसके बारे में यह चर्चा आम थी। ऐसे ही हटाये गये एक पेट्रोलियम मन्त्री जयपाल रेड्डी ने खुलकर इस ओर इंगित किया था।

इस बीच 2013 में रिलायंस और ओएनजीसी के बीच गैस चोरी को लेकर विवाद की थोड़ी–थोड़ी भनक मिलना शुरू हो गयी थी। ओएनजीसी ने 15 मई 2014 को दिल्ली उच्च न्यायालय में एक मुक़दमा दायर किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ ने उसके गैस ब्लॉक से हज़ारों करोड़ रुपये की प्राकृतिक गैस चोरी की है। ओएनजीसी का कहना था कि रिलायंस ने जानबूझकर दोनों ब्लॉकों की सीमा के बिल्कुल क़रीब से गैस निकाली, जिसके चलते ओएनजीसी के ब्लॉक की गैस आरआईएल के ब्लॉक में चली गयी।

ओएनजीसी के चेयरमैन डीके सर्राफ़ ने 20 मई 2014 को अपने बयान में कहा कि ओएनजीसी ने रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ के ख़िलाफ़ जो मुक़दमा दायर किया है, उसका मक़सद अपने व्यावसायिक हितों की सुरक्षा करना है। क्योंकि रिलायंस की चोरी के चलते उसे लगभग 30,000 करोड़ रुपये का नुक़सान हुआ है। 23 मई 2014 को एक बयान में रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ ने कहा कि 'हम केजी बेसिन से कथित तौर पर गैस की 'चोरी' के दावे का खण्डन करते हैं। सम्भवत: यह इस वजह से हुआ कि ओएनजीसी के ही कुछ तत्त्वों ने नये चेयरमैन और प्रबन्ध निदेशक सर्राफ़ को गुमराह किया जिससे वे इन ब्लॉकों का विकास न कर पाने की अपनी विफलता को छुपा सकें।'

15 मई 2014 को ओएनजीसी ने जो केस दिल्ली हाईकोर्ट में दाख़िल किया था उसमें एक विशेष बात यह थी कि ओएनजीसी ने रिलायंस पर तो चोरी का आरोप लगाया ही था, उसने सरकार को भी आड़े हाथों लिया था। ओएनजीसी का कहना था कि पेट्रोलियम उद्योग के नियामक डायरेक्टर जनरल ऑफ़ हाइड्रोकार्बन्स (डीजीएच) और पेट्रोलियम मन्त्रालय द्वारा निगरानी नहीं किये जाने के कारण ही रिलायंस ने यह चोरी की। यानी कि एक पक्ष मतलब ओएनजीसी कह रहा था कि दूसरे पक्ष यानी रिलायंस और तीसरे पक्ष अर्थात सरकार ने मिलकर इस डकैती को अंजाम दिया है। लेकिन ओएनजीसी को उसकी औक़ात मोदी सरकार ने 9 दिन के अन्दर ही याद दिला दी। सरकार ने 23 मई को रिलायंस, ओएनजीसी और पेट्रोलियम मन्त्रालय के अधिकारियों की एक बैठक करवायी और सबने मिलकर इस मामले के अध्ययन के लिए एक समिति बनाने का निर्णय लिया, जिसमें रिलायंस ओर सरकारी प्रतिनिधि शामिल थे। समिति ने मामले की जाँच का ठेका दुनिया की जानी-मानी पेट्रोलियम तकनीकी सलाहकार अमेरिकी कम्पनी डिगॉलियर एण्ड मैकनॉटन (डी एण्ड एम) को दे दिया।

डी एण्ड एम ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि ओएनजीसी के ब्लॉक से आरआईएल के ब्लॉक में 11,000 करोड़ रुपये की गैस गयी है। दूसरे, उसने यह सलाह भी दे डाली कि इन ब्लॉकों में बची गैस को रिलायंस से ही निकलवा लिया जाये, क्योंकि वह इस काम को करने में माहिर है। इस रिपोर्ट पर निर्णय देने के लिए मोदी सरकार ने न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) ए पी शाह की अध्यक्षता में एक जाँच समिति का गठन किया। समिति का काम इस मामले में हुई भूलचूक की जाँच करना और ओएनजीसी को दिये जाने वाले मुआवज़े के बारे में सिफ़ारिश करना था।

शाह समिति ने इस मामले में स्पष्ट रूप से कहा कि मुकेश अम्बानी की अगुवाई वाली रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ को ओएनजीसी के क्षेत्र से अपने ब्लॉक में बह या खिसककर आयी गैस के दोहन के लिए उसे सरकार को 1.55 अरब डॉलर का भुगतान करना चाहिए। रिपोर्ट के मुताबिक़ रिलायंस अनुचित तरीक़े से फ़ायदे की स्थिति में रही है। लेकिन मोदी सरकार ने रिलायंस द्वारा इस फ़ैसले को मानने से इनकार करते हुए उसके द्वारा अन्तरराष्ट्रीय पंचाट में जाने के निर्णय को स्वीकार कर लिया, जिसके द्वारा दिये गये फ़ैसले ने देश की जनता को सदा के लिए महँगे दामों पर गैस ख़रीदने पर अब मजबूर कर दिया है। दरअसल वहाँ पर मोदी सरकार की नहीं भारत की जनता की हार हुई है और एक पूँजीपति की जीत हुई है और वो भी एक ऐसे केस में जो साफ़-साफ़ चोरी और सीनाज़ोरी का मामला था।

कमाल की बात यह कि हमारी 'राष्ट्रवादी चौकीदार' सरकारों ने रिलायंस जैसी कम्पनियों के साथ, उन्हें ऐसे संकट से बचाने के लिए, यह समझौता किया हुआ है कि भारत सरकार और भारतीय कम्पनी के बीच भारत में ही हुए किसी विवाद का फ़ैसला भारतीय अदालतों के बजाय कुछ विदेशी पंचों से कराया जायेगा जिन्हें सरकार और कम्पनी दोनों की पसन्द से चुना जायेगा! वैसे तो भारतीय अदालतें भी पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ ज़्यादा कुछ नहीं करतीं, पर साफ़-साफ़ चोरी वाले मामलों में न्याय का दिखावा करने की विवशता या कभी-कभी ग़लत जज के पास मामला फँस जाने से गड़बड़ की आशंका रहती है, इसलिए दुनिया-भर में से आरोपी कम्पनी की सहमति से छाँटे गये पंचों से फ़ैसला कराने से पूरा 'न्याय' होता है, पूँजीपतियों के पक्ष में। तो रिलायंस की सहमति से चुने गये पंचों से जो उम्मीद थी, वही हुआ है। पर आख़िर ये फ़ैसला सामान्य अदालती व्यवस्था के बजाय इस मध्यस्थता पंचाट में क्यों हुआ?

मध्यस्थता पंचाट क्या है?

वैसे तो न्यायालय सहित पूँजीवादी राजसत्ता के सभी अंग पूँजीपति वर्ग के हितों की सुरक्षा हेतु ही काम करते हैं। मगर बुर्जुआ जनतन्त्र का संविधान, नियम-कायदे देश के सभी नागरिकों को एक औपचारिक क़ानूनी समानता का अधिकार ज़रूर देता है जिसे लागू करते वक़्त पूँजीवादी जनतन्त्र के क़ानून और न्याय की सामाजिक मान्यता क़ायम रखने हेतु औपचारिक संवैधानिक अंगों को क़ानून के समक्ष समानता और न्याय करते हुए दिखने की आवश्यकता मौजूद रहती है। इसलिए सीधे-सीधे अन्यायपूर्ण दिखने वाले कुछ मामलों में कभी-कभी किसी ख़ास पूँजीपति के विरुद्ध फ़ैसला होने की सम्भावना पूरी तरह ख़ारिज़ नहीं की जा सकती। इसलिए पूँजीपति वर्ग इस संवैधानिक व्यवस्था की औपचारिक समानता से भी मुक्त होने के रास्ते ढूँढ़ता रहा है। ख़ास तौर पर जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादी देशों का सीधे औपनिवेशिक शासन समाप्त होने लगा और नवउपनिवेशवाद का दौर आया तो इन नवस्वाधीन देशों में साम्राज्यवादी देशों की पूँजी के हितों की हिफ़ाज़त के लिए आवश्यक व्यवस्था स्थापित करने की ज़रूरत खड़ी हुई। इण्टरनेशनल मोनेटरी फ़ण्ड (आईएमएफ़) और विश्व बैंक जैसी संस्थाओं को तो सभी जानते हैं लेकिन 1950 के दशक में विभिन्न व्यापार और निवेश सन्धियों के ज़रिये एक और व्यवस्था अस्तित्व में आयी जिसका नाम है निवेशक-राज्य विवाद निपटान या इंवेस्टर-स्टेट डिस्प्यूट सेटलमेण्ट (आईएसडीएस) जिसके अन्तर्गत अन्तरराष्ट्रीय व्यापार व निवेश को प्रबन्धित-संचालित करने वाली द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सन्धियों में यह शर्त शामिल की गयी कि निजी पूँजीपति निगमों और उनकी पूँजी निवेश वाले देशों के बीच विवाद की स्थिति में इन निगमों को यह अधिकार होगा कि वे

(पेज 10 पर जारी)

मोदी सरकार के नये भ्रष्टाचार-विरोधी क़ानून पर राजेन्द्र धोड़पकर का कार्टून

सत्याग्रह.कॉम से साभार

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006